संध्या के गीत

(भाग–२)

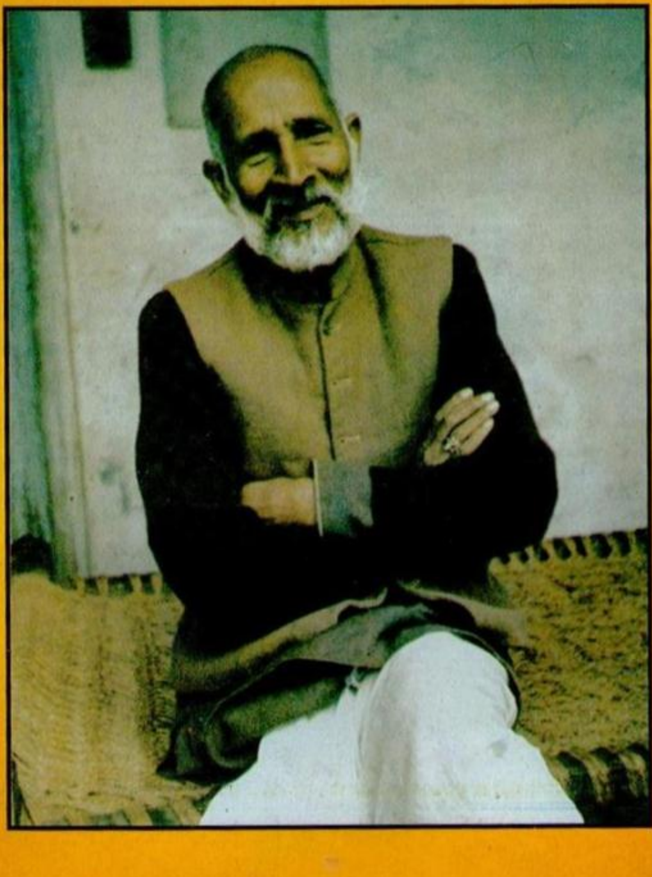

– कस्तूरी बहिन

संध्या के गीत

(भाग–२)

— *कस्तूरी बहिन*

प्रथम संस्करण : जनवरी 2001
500 प्रतियाँ

© : सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : Rs. 60/-

प्रकाशक : श्री जी.डी. चतुर्वेदी
सी. 830–ए, पारिजात,
एच रोड, महानगर,
लखनऊ.

मुद्रक : एन्टेक्स प्रिंटर्स,
10–ए, बटलर रोड,
डालीबाग, लखनऊ.
दूरभाष : 207920, 205070

विषय–सूची

क्रमांक	गीत	पृष्ठ संख्या
	दो शब्द	
1.	घिर रही सजल घोर रजनि	1
2.	माई मेरो अंग–अंग रस भींजो	4
3.	माई मेरो अब छूट्यो यह देश	6
4.	अलख लखाओ मेरे राम रमैया	8
5.	माई मैं तो सुन्यो चकोर ठगायो	9
6.	मूरति कोऊ न नैनन आवत	11
7.	हरि बिन तड़पन है मन मेरो	13
8.	जैसी रहनी तैसेई रहूँ	15
9.	अब है उल्टी–पलटी रीति	17
10.	देख्यो आली अस सनेह	19
11.	रे मन रहु अंतर के देश	21
12.	आज जीवन ढल रहा है	23
13.	मन मोहन मूरति आनि बसी	26
14.	या मन मधुर मूरति पगी	28
15.	माई ढूँढ़न आऊँ कित ठौर	30
16.	तो बिन ऐसी कौन करे	32
17.	अब शून्य सकल दिशि सकल बाट	34
18.	कब लौं करोगे इत नैन प्रभु जी	36
19.	जाग्यो री माई अभिअन्तर जो जगाय	38
20.	एक अचिरिजु मैं निहारो	40
21.	कौन जाहि अब शीष नवाऊँ	42
22.	विरह अगिनि जरो गात	44

क्रमांक	गीत	पृष्ठ संख्या
23.	दई अब जाऊँ कौन गली	46
24.	मोहे आज श्याम रंग डूबन दे	48
25.	जीवन में हमारे आई बहार	51
26.	लाई री लाई मेरे मन को जु मीत	53
27.	आली बहुत कही है अब लौं	55
28.	अलि बहुत कही ही, अब नहिं कहिहौं	57
29.	जागि री सजनी भोर भयो री	59
30.	सुन री एक सपन मैं देखी	61
31.	तेरे द्वार पड़े युग बीत गये	63
32.	यह तन छार–छार उड़ि जावैं	65
33.	जब हरि अधिक–अधिक नियरैहैं	67
34.	चलो आश्रम चलें, चलो आश्रम चलें	69
35.	हम तो इन पे निसार रहते हैं	72
36.	धन–भाग्य तुम आये एक बार	75
37.	हमने वो बहारें देखी हैं	78
38.	कौन थे वो कौन थे	81
39.	याद आती हैं निगाहें	87
40.	भूल गई मैं तो घर अपना रे	91
41.	यादों ने किया याद	98
42.	हमारा त्यौहार	103
43.	प्रश्न दीवानगी का	107
44.	गीत (जन्म शताब्दी वर्ष)	111
45.	मुझे आज तेरी बहुत याद आये	115
46.	आफ़ताबे–मारिफ़त	120

दो शब्द

आज 'संध्या' के गीतों का यह द्वितीय–भाग प्रिय पाठकगण को दैविक दशाओं की नवीन धारा में डुबोने हेतु उनके समक्ष है। समस्त के लिये एक दैविक निमंत्रण के रूप में सहज–मार्ग–धारा में डूबे हुए ये गीत मेरे बाबू जी के दैविक़ प्रेम का प्रतीक हैं। सच तो यह है कि चालीस वर्ष पूर्व के लिखे हुए और सहज–मार्ग पत्रिका में छपे हुए इन गीतों को हमारे प्रिय भाई प्रसाद जी ने संकलित करके, श्री बाबूजी महाराज द्वारा उतारी हुई आध्यात्मिक दशाओं के प्रसाद रूप में समस्त के हित संभव किया है। आशा है ये गीत आप सभी को पूज्य बाबू जी महाराज की भक्ति व प्रेम में सराबोर करने में समर्थ होंगे।

– बहिन कस्तूरी

शत–शत प्रणाम

1. घिर रही सजल थी घोर रजनि, हाँ जग था केवल तमस्–पुंज।
तुम उतरे लेकर विधु–दीपक, अरू मानवता का विमल–कुंज।।

2. फिर आलोकित हो उठी मही, नभ के तारक हो गये सजग।
वह दिशि कंचन हो गई जिधर, बढ़ गये तिहारे चरण–सुभग।।

3. निज श्वाँस और प्रति श्वाँसों में, मानव का हाहाकार लिये।
इच्छा का कारागार लिये, बेसुधि का पारावार लिये।।

4. आओ, बैठो, अंतर में भर दो, ज्योति और आशा ललाम।
कैसे–स्वागत् मैं करूँ देव, तुमको प्रणाम शत्–शत् प्रणाम।।

5. आओ नव–नव अनुराग लिये, अरू युग–परिवर्तन का सपना।
कैसे सम्भव जग–सैकत पर, रे चरण–चिन्ह का तव मिटना।।

6. हाँ, क्षितिज–पटी पर हीरक से, अब जड़ जावेगी अमर कहानी।
आज हिमालय तक गूँजेगी, "बाबू" तेरी कोमल वाणी।।

7. निःश्वाँस अमर में है तेरी, उस महाशक्ति की चरम विजय।
हुँकार अनोखा कर देगा, जगती में नीरव महाप्रलय।।

8. मस्तक पर अंकित दिव्य–किरण, "हिमकर" तब शोभा है ललाम।
कैसे स्वागत मैं करूँ देव, तुमको प्रणाम शत–शत प्रणाम।।

व्याख्या

1. सन् 1950 की एक शाम! हम सब लोग आदरणीय मास्टर ईश्वर सहाय जी के गृह लखीमपुर खीरी में एकत्रित थे। हमारे परम–जीवन–सर्वस्व श्री बाबूजी महाराज शाहजहाँपुर से 3,4, दिन के लिये लखीमपुर पधारे हुये थे। मेरा भाई तुलसीदास (हिमकर) व भाई रामस्वरूप कमठान भी हमारे साथ ही थे। उस दिन की सुहावनी संध्या ने पूजा (ध्यान) के बाद, एक युग – प्रवक्ता के आवाहन स्वरूप, उनके गौरव गुणानुवाद के रूप में यह गीत हम अभ्यासियों के हित मेरे भइया तुलसीदास की

लेखिनी द्वारा उतारा था। गीत में भाई का उपनाम "हिमकर" ही सुधन्य हुआ है और इस गीत की गरिमा एवं गौरव श्री बाबूजी महाराज को ही स्वतः समर्पित हुई है।

1. कवि का कहना है कि "हे बाबूजी! आप ऐसे समय में इस धरा पर अवतरित हुए जबकि इस नितान्त गिरे हुये युग में चारों ओर पाप के अंधकार रूपी बादल ही मँड़रा रहे थे। आज जब यह संसार अँधियारे का पुन्ज सा ही बन कर रह गया है तभी आप शान्ति एवं उज्जवल पावनता के प्रतीक बनकर सहज–मार्ग रूपी चंद्र–दीप को लेकर, धरा को दिव्य–प्रकाश से प्रकाशित करने के लिये ही अवतरित हुये। इतना ही नहीं आध्यात्मिकता के साथ ही मानव के लिये सद्‌गुण एवं सदाचार का पावन कुँज भी लेकर पधारे हैं।

2. मेरे बाबूजी! आपके आगमन से सारी पृथ्वी एक बार फिर प्रकाशित हो उठी है और धरा ही क्या आकाश के तारक–गण भी चौकन्ने होकर मानो आपके मुखारबिन्दु की ओर ही निहार रहे हैं। इतना ही नहीं जिस दिशा में आपके दैविक–चरण–द्वय बढ़ जाते हैं वह दिशा मानो कंचन के समान ही बन जाती है।

3. मेरे मालिक! मुझे लगता है कि आपकी श्वाँसों में मानव का हाहाकार या पीड़ा ही समायी हुई है। अनगिनत इच्छाओं के कारागार में फँसा मानव नितान्त बेसुध सा हो गया है इसीलिये मानव की अशान्तिमई पीड़ा को दूर करने के लिये एवं इच्छाओं के कारागार से मुक्ति प्रदान करके, ईश्वर–प्राप्ति के जागरण को उनके अंतर में जागरूक करने के लिये ही आप धरा पर पधारे हैं।

4. आज आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप मानव–अंतर में विद्यमान होकर सबके अंतर को दिव्य–प्रकाश से भर दें जिससे सबके मन में ईश्वर–प्राप्ति की सुन्दर–आशा बलवती हो जाये। कवि पुनः कहता है कि सच तो यही है कि मेरी समझ में नही आ रहा है कि हम आपका स्वागत् किस प्रकार करें। बस इतना ही आपका स्वागत् है कि आप हमारा सौ सौ बार प्रणाम ही स्वीकार करें।

5. हे मेरे बाबूजी! आप धरा पर हम मानवों के हित नित नये प्यार की वर्षा लिये हुये और युग के परिवर्तन अर्थात् सत्–युग (ईश्वर–प्राप्ति के युग) के आगमन का स्वप्न लेकर पधारें हैं, जिसे आपकी पावन–प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह ही साकार कर दिखायेगा। हे महामना, इतना बड़ा संकल्प आप लेकर संसार में पधारे हैं इसलिये मैं कह सकता हूँ कि इस संसार की धरा की माटी पर अंकित आपके पावन चरण द्वय के निशान अमिट रहेंगे।

6. इतना ही नहीं हे परम–प्रिय! आकाश रूपी पट पर आपके दिव्यागमन का अमिट एवं अनन्त लेखन अब मानव दैविक हीरे के समान ही जड़ जायेगा। कवि कहता है कि मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि हिमालय की चोटी तक मेरे बाबूजी आपकी अति–कोमल–वाणी का ही गुंजन व्याप्त हो जायेगा।

7. हे स्वामी! आपके हर उच्छ्वास अर्थात् आती–जाती श्वाँसों की अमर–गति) में दिव्य–महा–शक्ति की चरम–विजय की ही दैविक सुगन्ध का प्रसारण भरा हुआ है। इतना ही नहीं दिव्य आदि–शक्ति के स्वामी! आपकी अद्भुत एवं दैविक–शक्ति से परिपूर्ण एक हुंकार ही समस्त–विश्व में महाप्रलय की जगह पर परम–शान्ति का प्रवाह भर देगा।

8. 'हिमकर' का कहना है कि मेरे बाबूजी! आपके दर्शन पाकर मुझे लगा कि आपके मस्तक पर दिव्य–प्रकाश व्याप्त है जिससे आपकी दैविक शोभा और भी बढ़ गई है। हे बाबूजी! भला ऐसी दिव्य–विभूति, दिव्य आकृति का स्वागत् मैं किन शब्दों में कर सकता हूँ। आपको मेरा प्रणाम है और स्वागत्–रूप में आप मेरा सौ, सौ बार नमन स्वीकार करें।

माई मेरो अंग–अंग रस भींजो

1. माई मेरो अंग–अंग रस भींजो।
रोम–रोम में राम रम्यो है, मनुवा दिन–दिन छीजो।।

2. रैन न सोऊँ, दिन नहिं जागूँ नेक नहिं अलसाऊँ।
शान्ति, अशान्ति न मन में राखूँ, क्यों पिव ठौर गवाऊँ।।

3. तन नहिं जानूँ, मन नहिं जानूँ, जीवे या मर जाऊँ।
मैं मदमाती, मदभरी डोलूँ, मौन रहूँ, नहिं गाऊँ।।

4. भीतर जलूँ, न जलूँ बाहिरे, जल बिन श्रोत दिखाऊँ।
'सन्ध्या' कहत हों भई बावरी, जसि तेहि में सचुपाऊँ।।

व्याख्या

1. ओ मेरे बाबूजी! अब तो मेरी ऐसी दशा है कि लगता है कि मेरा अंग–अंग आपकी दित्य–प्राणाहुति–शक्ति में भींगा हुआ है। मुझे ऐसा लगता है कि मेरे रोम–रोम में मेरा राम (श्री बाबूजी का दैविक–स्वरूप) ही समाया हुआ है। शायद तभी मुझे लगता है कि मुझमें मन की चीज़ दिनों दिन समाप्त होती जा रही है।

2. मुझे कुछ ऐसा भी लगता है कि मानों मैं कभी सोती ही नहीं तो भला जागना भी किसका होगा। फिर मेरे बाबूजी, आपकी कृपा से मुझे आलस्य या सुस्ती का एहसास कभी नहीं होता है। न जाने मुझे अब क्या हो गया है कि न तो मेरे मन में अब शान्ति के आनन्द के लिये ठौर है और न मिलन के लिये कोई तड़प रख पाने का स्थान है। क्योंकि मुझे डर लगता है कि यदि मैं मन में इनको ठहरने का स्थान दूँगी तो फिर मेरा प्रिय जो अंतर में ही विद्यमान है उसकी प्रतीति का ख्याल मिट जायेगा। या यूँ कहूँ कि यदि कोई दूसरा ठहरा तो फिर मेरे 'मालिक' के ठहर पाने के लिये स्थान नहीं रह पायेगा।

3. मेरे बाबूजी! अब तो मुझे अपने तन, मन की सुधि कुछ ऐसी भूल गई है कि इसकी प्रतीत एवं फिक्र भी नहीं है कि यह जीवित है

या मर गया है। मेरा तो यह हाल है कि आपकी प्राणाहुति का निरंतर प्रवाह पाते रहने के कारण मानों उसका दैविक–नशा सा छा गया है जिसका अंतर में हर समय एहसास पाते रहने के कारण उस आनन्द को न व्यक्त कर पाने के कारण ही अब जिह्वा तो मौन ही हो गई है।

4. ओ मेरे मालिक! यह कैसी–विरह–की अग्नि है जो मेरे अंतर के कण–कण को जला रही है लेकिन बाहर न मुझे और न किसी को ही इसका पता है। यह भी एक अजीब बात है कि आपकी बार–बार दिल से याद करती हूँ तो ऐसा लगता है कि मानों मैं अंतर को बिना जल का अर्थात् सूखा श्रोत ही दिखा पा रही हूँ जो उसकी अग्नि को शान्त नहीं कर सकता है। मेरे बाबूजी; अब तो यही कहा जा सकता है कि या तो आपकी 'संध्या' ही बावली हो गई है या जैसी अंतर–दशा है उसी में प्रसन्न रहना सीख गई है।

माई मेरो अब छूट्यो यह देश

1. माई मेरो अब छूट्यो यह देश।
घर भी छूट्या, वन भी छूट्या, छूटा है परदेश।।

2. तन भी छूट्या, मन भी छूट्या, छूटो है सारे वेष।
सहज बूँद बरसे निशिवासर, भींजू जाय अदेश।।

3. दस दरवाजे पाँच खिड़कियाँ, ता बिच मैं रही सोय।
मेरे 'राम' ने दई हुँकारी, भागी वेष – कुवेश।।

4. बाहर आय 'प्रभु' दरशन दीन्हा, चीन्हत भई मदहोश।
जागत–सोवत 'पिउ' संग डोलूँ, रीती दोष–अदोष।।

5. मनहिं मौन है करूँ आरती, ताही में कछु गाऊँ।
'सन्ध्या' साँझ भई घर आई, मेरे 'राम' लियो पोष।।

व्याख्या

1. भाई अब मैं क्या लिखूँ! मुझे लगता है कि मालिक ने मुझसे मेरा देश (पिंड–देश) ही छुटा दिया है। मुझे तो लगता है कि घर (पिन्ड) तो छूटा ही इसीलिये वन का विचार भी मुझे छोड़ गया है अर्थात् वैराग्य का भाव भी मुझे अपने में अब प्रतीत नहीं होता है। ऐसा भी नहीं लगता है कि घर छोड़ कर कहीं पर–देश (दूसरे–देश) में आ गई हूँ। शायद यहाँ की दशा ही मेरा वेष और देश दोनों ही बन गई है जिसे मैंने बार–बार अपने बाबूजी को लिखा था कि 'अब यह दशा ही मेरा स्वरूप हो गई है'।

2. ऐसी दशा तो है ही कि न तो अब इस शरीर से मेरा सम्बन्ध है और न मन से ही मेरा सम्बन्ध लगता है। वेश–भूषा किसी का भी तो मुझे होश नहीं रह गया है। कुछ ऐसा लगता है मेरे बाबूजी! कि मानों कहीं से सहज ही बूँदों की सतत वर्षा हो रही है और मैं न जाने कहाँ उस दैविक वर्षा की बूँदों में भीग रही हूँ।

3. ऐ मेरे मालिक! अब तो पाँच इन्द्रियों और पाँच ज्ञानेद्रियों

(खिड़कियों) वाले शरीर रूपी घर में ही मैं खोई हुई मानों सो रही हूँ। किन्तु आपकी प्राणाहुति का हृदय में प्रवाह पाते ही मानों मेरे अंतर को किसी ने झकझोर कर जगा दिया और बावरी सी मैं सहज–पथ पर भाग चली हूँ। मुझे खाने पहिनने का होश ही नहीं है।

4. हे मेरे बाबूजी महाराज! जब मैं अंह के बंधन से स्वतंत्र होकर बाहर आई तभी मुझे आपने अपने प्रिय–दर्शन का परम–सौभाग्य प्रदान किया। लेकिन सच तो यह था कि वह दिल–दर्शन जो उस समय मैने पाया था उस समय मैं मानों स्वयं का ही होश खो बैठी थी, क्योंकि जब मैंने जाना कि अरे! यह तो मेरे बाबूजी का दर्शन है तो फिर होश ठहरता भी कैसे क्योंकि मुझे क्या मालूम था कि मेरे बाबूजी जो हमारे बीच में हमारी तरह से, हमारे ही बनकर रहते हैं, वे वास्तव में ये हैं जिनका दर्शन मैं अब पा रही हूँ। बस तबसे ही मेरी यह दशा हो गई कि जागते, सोते हर पल ही मैं अपने को आपके साथ ही पा रही हूँ। इतना ही नहीं आपने तब मुझे यह भी तो श्रेष्ठ–दशा प्रदान कर दी कि मानों मैं गुण, अवगुण सबसे ही परे (दूर) हो गई हूँ।

5. मेरे बाबूजी; आपका वह दैविक–सलोना दर्शन पाकर मैं ऐसी कृतार्थ हो गई हूँ कि मेरा मन मानों मौन (परम–शान्तिमय) हो गया है और लगता है कि मानों वह स्वयं परमानन्द में ही कुछ गुनगुनाता हुआ आपकी आरती कर रहा है अथवा यूँ कहूँ कि उस दर्शन पर बलिहार हो गया है। संध्या कहती है कि जैसे दिन का भूला शाम को घर आ जाता है तो वह भूला नहीं कहाता है। आज वही मेरे साथ हुआ है और खुशी इसलिये भी है कि मेरे राम (आपने) ने मेरा पालन करना शुरू कर दिया है।

अलख लखायो मेरे राम रमैया

1. अलख लखायो मेरे राम रमैया, अलख लखायो।
याहि दशा कैसे कहूँ सजनी, सद्गुरू मोहे लखायो री।।

2. अलख–निरंजन नाम सुन्यो आली, ताहि में अंग रमायो री
'संध्या' प्रेम की धूनी रमाई, सहज–मार्ग चित लायो री।।

व्याख्या

1. मेरे बाबूजी! आपने तो मुझे उस अंर्तधान रहने वाले का भी दर्शन करा दिया है और यह भी दिखा दिया है कि राम तो (रमैया) अर्थात् समस्त में रमने वाला है। हे सखि, मैं इस दशा के बारे में अभी कुछ भी लिख (व्यक्त) नहीं सकती हूँ बस इतना कह सकती हूँ कि (ईश्वर की बारीकी को जानने वाले), मेरे सत्‌गुरू श्री बाबूजी ने ही मुझे विराट् का दर्शन कराया है।

2. अब तक जिसके बारे में मैं यही सुनती आई हूँ कि वह (ईश्वर) अलख निरंजन है तो भी उसके ध्यान मे ही तन्मय रहने का अभ्यास मैंने किया है। 'संध्या' कहती है कि जबसे मेरे बाबूजी ने मुझे श्रीरामचन्द्र मिशन के अतंर्गत सहज–मार्ग साधना पद्धति के ध्यान को हृदय में रखने को बताया है तभी से मालिक की प्रेम रूपी धूनी में खुद (अपने होने के भाव) को भी राख कर दिया है।

माई मैं तो सुन्यो चकोर ठगायो

1. माई मैं तो सुन्यो चकोर ठगायों।
   प्रभु चकोर अरू मैं बनी चन्दा, यही खेल मन भायो।।

2. निशिदिन जैंवत लाल अंगारे,वाही के ललचाये।
   काह कहूँ यह उल्टी करनी, नैनन 'राम' बसायो।।

3. एक कूल पर बनी चकोरिन, निज प्रभु सकहि न पायो।
   सागर, सर, अनुराग पार करि, क्यों न परसि सचुपायो।

4. काह करूँ अब यह मति सजनी, रहि चकोर भरमायो।
   ईश्वर, परमातम सब बिसरी, सन्ध्यहिं 'राम' ठगायो।।

व्याख्या

1. ओ माँ! मैंने तो आज अपनी दशा को देखकर कुछ अजूबा ही पाया है कि अब तक तो मैंने यही सुना था कि चकोर (पक्षी) चन्द्रमा का ऐसा प्रेमी है कि रात भर ठगा सा उसे ही निहारता रहता है किन्तु अपनी सहज–मार्ग–साधना में तो मैंने ऐसा अनुभव में पाया है कि मानों मैं चंद्रमा बन गई हूँ और मेरे मालिक की कृपा–दृष्टि चकोर की भाँति सदैव मुझे ही निहारती रहती है। ईश्वरीय–पथ पर ऐसी ही उलटबासी का खेल मैंने पाया है।

2. सुना है कि चंद्रमा के लालच में ही चकोर जलते हुए लाल अंगारों का धोखा खा जाता है परन्तु यहाँ मैं अपनी दशा के बारे में भला क्या कह सकती हूँ जबकि यहाँ तो मैं उल्टी ही बात देख रही हूँ कि मालिक मेरे सारे अवगुण रूपी अंगारों को भी स्वयं अपनी पावन–प्राण–शक्ति द्वारा भस्म करते जाते हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि मेरे तो नैनों में मेरे बाबूजी इस तरह से समाये हुये हैं कि मुझे तो अवगुण रूपी अंगारे दिखाई ही नहीं पड़ते हैं।

3. वास्तव में यह कैसी असहनीय–वियोग की स्थिति है कि जैसे सरोवर के एक किनारे तो चकोर है और दूसरे किनारे पर चकोरिन है किन्तु मानों किसी श्रापित की तरह से आमने–सामने

होने पर भी वे मिल नहीं सकते हैं। उसी प्रकार नैनों में प्रिय के समाये रहने पर भी विछोह की पीड़ा ही मेरे हाथ लगी है, मुझे मिलन की घड़ी बहुत दूर लग रही है। यद्यपि मैं जानती हूँ कि मध्य की दूरी को प्रेमरूपी नाव पर सवार होकर पार करने से ही चकोर और चकोरिन भी मिल सकते हैं और यही दैविक–उपाय मेरे लिये भी है तभी मुझे 'उनके' पावन–चरण द्वय के स्पर्श का परम–सुख प्राप्त हो सकता है। परन्तु जानते हुये भी अबेर क्यों हो रही है, पता नहीं।

4. 'सध्या' कहती है कि मैं अपनी समझ को क्या कहूँ लगता है यह भी चकोर की तरह से एकटक हुई ठगी सी अपने बाबूजी के मुखारबिन्दु को ही निहारती रह गई है। परमात्म–साक्षात्कार एवं ईश्वर–साक्षात्कार सभी कुछ को भूली हुई मैं मानों अपने राम के ध्यान में ही ठगी (भूली) हुईसी खड़ी रह गई हूँ।

मूरति कोऊ न नैनन आवत

1. मूरति कोऊ न नैनन आवत।
ओ री सखी सुन्दर मोहनी छवि, मोहि तें अधिक मोहि भावत।।

2. 'राम' रम्यो कोऊ कहत 'चन्द' सम शीतल किरणें लावत।
लख्यों अधिक प्रभु सहज स्वरूपहिं, राखत उपमा लाजत।।

3. अनुदिन बहूँ बिना जलधारा, बढ़ै कबहुँ घटि जावत।
जोई–जोई पैहूँ, तेई–तेई उबरूँ, कौन जतन तेहि धावत।।

4. जे उतरे निज 'प्रभु' कारज हित, पावन–शक्ति विराजत।
तेई अली सुन्दर सद्गुरू सम, 'सन्ध्या' ताहीं गावत।।

व्याख्या

1. मेरे मालिक! आज मुझे न जाने क्या हो गया है कि कोई स्वरूप, कोई छवि मेरी आँखों के आगे नहीं ठहर पाती है। जानते हैं ऐसा क्यों हो गया है? इसलिये कि मेरी दृष्टि के समक्ष तो ऐसी मोहनी (मन को लुभाने वाली) छवि है कि जो मुझे अब खुद मेरे स्वरूप से भी ज्यादा भा गई है अर्थात् इसके समक्ष में रहने से अब मुझे खुद का भान ही भूल गया है।

2. अब तक सुनती आई हूँ कि 'समस्त में 'राम' ही व्याप्त है जिनकी सामीप्यता हमें चंद्र किरणों के समान शीतलता प्रदान करती है। आज मेरे बाबूजी! आपकी निरंतर एवं सहज–स्वरूप (विराट) की सामीप्यता मानों उससे भी अधिक ऐसी परम–शान्ति का अनुभव प्रदान कर रही है जिसकी किसी से उपमा ही नहीं दी जा सकती है।

3. मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मानों बिना जल की धारा के ही मैं कहीं किसी धारा में कदाचित् प्राणाहुति की धारा में ही रात–दिन बहती जा रही हूँ जिसका एहसास कभी तो बढ़ जाता है और कभी घट जाता है। इतना ही नहीं मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं

इस पावन–प्राणाहुति की धारा में जितनी ही गहराई में पैठती हूँ उतनी ही और भी हल्की होकर ऊपर आकर पुनः तैरने लगती हूँ। मुझे तो इतना भी ज्ञान नहीं है कि मैं इसकी गहराई में कैसे स्थिर हो पाऊँगी।

4. ओ मेरे बाबूजी! आपकी संध्या तो बस इतना ही जान पाई है कि जो (आप) अपने प्रभु (लालाजी सा) के द्वारा सौंपे गये दैविक–कार्य को पूर्ण करने के लिये ही पृथ्वी पर अवतरित्त हुये हैं और दिव्य–शक्ति के स्वामी हैं वे ही आप, दित्य–सद्‌गुरू की भाँति मेरा पालन कर रहे हैं, और संध्या, आपका ही गुणानुवाद करती रहती है।

हरि बिन तड़पत है मन मेरो

1. हरि बिन तड़फत है मन मेरो।
कॉसू कहूँ व्यथा सुन सजनी, कैसे होय निबेरो।।

2. पीहर बसूँ, न बसूँ सास घर, कोऊ कहूँ नहिं मेरो।
कौन सुनइ को बरनय ऐसो, बिरलो देश हमारो।।

3. सूनी दिशा, सकल पथ सूनो, सूझ न हाथ पसारो।
अगर, बगर सब सूनी निशि में, सद्गुरू दिवलो बारो।।

4. हँसू न आवत हँसी, न रोऊँ, रोवत मोती झारो।
चुन–चुन मोती हियो में संजेलूँ, पल–छिन होय बसेरो।।

5. शब्द सुनत बलि चौंकि चितई चित्त, आस लगाये 'प्रभु' की।
कबहुँक जौहरी हीरक परखै, पावै 'संध्यहिं' खारो।।

व्याख्या

1. न जाने मुझे क्या हो गया है कि अब तो प्रिय से मिल पाने के लिये मेरा मन बहुत तड़प रहा है। लेकिन मैं इस मन की पीर को किसी से कहकर जी हल्का भी नहीं कर सकती हूँ– मैं नहीं जानती कि इस तड़प से कब और कैसे मुझे छुटकारा मिल पायेगा।

2. मैं तो अब डंके की चोट इस सच को कह सकती हूँ कि मैं अपने पीहर अर्थात् माँ के घर ही बस गई हूँ और मैंने ससुराल का घर अर्थात् सांसारिक–घर को मानों त्याग ही दिया है अर्थात् जैसा मेरे बाबूजी ने लिखा था कि अब दशा सालोक्यता (मालिक के पास रहने) की ही हो गई है। अब शायद इसीलिये मानों मुझे किसी से भी अपनेपन की अनुभूति नही होती है। मानो किसी से कोई लगाव ही नहीं रह गयी है क्योंकि सुन कर समझ पाने वाला ही कौन है जिसे मैं सुनाऊँ। बस यही लिख सकी हूँ कि यह देश तो बिरला (अनोखा) ही है।

3. अब दशा क्या है लगता है कि वीरान (सूनी) हो गई है– उन्नति–पथ पर बढ़ते हुये भी लगता है कि मानों सब सूना पड़ा है। दृष्टि अब दशा से कुछ ऐसी दशा में विलीन हो गई है और अपने होने का होश कुछ ऐसा खो गया है कि अपना हाथ फैलाते हुये भी यह मेरा है यह होश नहीं आता है। इतना ही नहीं मार्ग के इधर–उधर भी सूनेपन सा ऐसा सन्नाटा छाया हुआ है मानों रात्रि ही फैली है–किन्तु मेरे बाबूजी का बड़प्पन तो देखिये कि ऐसी स्थिति में आपने मानों मेरे समक्ष दिव्य दीपक का प्रकाश फैला दिया है।

4. मेरे बाबूजी! मेरी तो यह दशा हो गई है कि अब न तो मुझे हँसी ही आती है और न रोना ही आता है क्योंकि शायद अंतर ने सन्यास ही ले लिया है। यदि कभी अंतर से रोना आता भी है तो लगता है कि यह मोती (प्रेमरूपी) हैं इन्हें पी लूँ, झरने न दूँ। और सच ही मेरा अंतर मानों इन अश्रु–रूपी मोतियों को हृदय में ही सहेज (सभाँल) कर रख लेता है। मुझे ऐसी प्रतीति होती है कि मानों हर पल, हर क्षण मेरे बाबूजी मेरे हृदय में बसे जा रहे हैं, कभी हृदय से जाते ही नहीं है।

5. मन की सतत्–एकाग्रता (ध्यानावस्था) अब ऐसी हो गई है कि कोई खटक सुनते ही मन चौंक उठता है और जब दृष्टि अंतर को टटोलती है तो लगता है कि वहाँ मेरा अंतर मानों एकटक हुआ अपने बाबूजी के दिव्यागमन की प्रतीक्षा में यह आशा लगाये स्थिर हो गया है कि एक दिन कभी जब वह दिव्य–विभूति रूपी जौहरी मेरे प्रेम रूपी हीरे की परीक्षा लेंगे तो इसे वे (बाबूजी) खरा (विशुद्ध) ही पाएंगे।

जैसी रहनी तैसेई रहूँ

1. जैसी रहनि तैसेइ रहूँ।

2. एक दरपन एक साँचो, जेहि ढरावे तेहि ढलूँ।
कौन दुई सिर कौन बाको, रूप एकहिं छलूँ।।

3. कौन नदिया बहत निशदिन, तामें जल बिन बहूँ।
बैठि संगत 'सहज'–'प्रभु' की, शरण ताही गहूँ।।

4. नहिं सिंगार नहिं कछु बनाव सखि, रूप सहज ही लहूँ।
'सन्ध्या' दासी जनम–जनम की, छिन परतीत करूँ।।

व्याख्या

1. मेरे बाबूजी! संध्या को अब आप जैसे रखना चाहते हैं वैसे ही यह रहती है और ऐसी रहती है कि जो भी दैविक–दशा आप उसे प्रदान करते हैं उसकी ही अनुभूति में डूबी हुई ही वह रहने लगती हूँ। वह दशा एवं वहाँ का अख़लाक ही उसकी रहनी बन जाता है।

2. मेरे सामने तो बस एक ही दर्पण (शीशा) है आपकी दिव्य–छवि का और एक ही साँचा है आपकी भक्ति का उसमें भी जैंसा आप ढ़ाल रहे हैं वैसा ही ढ़लती (बनती) जा रही हूँ। इतना ही नहीं मेरे लिये अब आपके सिवा दूसरी कहाँ है जो मुझे छल सके। मैं तो बस आपके दैविक–स्वरूप द्वारा एक बार ही छली गई हूँ–जिसने मुझसे मेरा होश ही छीन लिया है।

3. मैं तो कहती हूँ कि संसार में कौन नदी है जिसमें बिना जल के भी बहाव होता है किन्तु यहाँ तो मैं पा रही हूँ कि बिना जल के भी मैं 'मालिक' की प्राणाहुति–धारा में निरंतर बहे ही जा रही हूँ। किन्तु ऐसी दशा मेरी तभी हो पाई है जबकि ह्रदय स्वतः ही उनके (offer) अर्पण रहने लगा था।

4. संध्या तो बस इतना ही जानती है कि यह भक्ति रूपी श्रृंगार और यह अर्पण रूपी दशा का निखार, और मानों कुछ भी नया नहीं है। क्योंकि आपको समक्ष में देखते ही मानों मेरा यह भक्ति रूपी श्रृंगार एवं हृदय के अर्पण का निखार स्वतः एवं सहज (स्वाभाविक रूप में) ही सँवर गया था। मेरे बाबूजी इसका भेद तो मैं अब जान पाई हूँ वह यही कि आपको प्रथम बार देखते ही क्षण भर में ही मानों मेरा मन आपको पहिचान गया था कि आप वही हैं जिसे वह जन्मों-जन्मों से खोज रहा था।

अब है उल्टी पलटी रीति

1. अब है उल्टी–पलटी रीति।
उनको ध्यान करत निशिदिन सखी, निज करन पर प्रीति।।

2. होम करत प्रभु मिलन–यज्ञ में, मन को तपस औ सीत।
सफल तरपन वाहि ही क्षण, अपन पौ की जीत।।

3. रटत कीड़ा भ्रमर पल–पल, ताहि तन गयो बीत।
रूप मिल्यो, रंग बिसर्‌यो, गात 'सो हम गीत'।।

4. कनक, मणि सम लखत तन कन, चौंकि चितय सप्रीति।
सोहिं बलि–बलि जात 'संध्या', पाँवरन पर प्रीति।।

व्याख्या

1. मेरे बाबूजी अब तो साधना की रीति ही मेरे लिये उल्टी हो गई है। क्यों अभी तक तो जैसा ध्यान आपने रखने के लिये बताया था अब तक वैसे ही रखने का मेरा प्रयास था – सहज स्थिति को भी तोड़कर मैंने प्रयास जारी रक्खा था किन्तु अब मुझे अपना ध्यान एवं अपने को ही प्रणाम करने को जी चाहता है और जी नहीं बल्कि ऐसा मैं स्वतः ही कर भी रही हूँ। यद्यपि इसमें मेरा कोई ख़्याल शामिल नहीं है।

2. मुझे कुछ ऐसा लग रहा है ओ मेरे बाबूजी! आपके दैविक–परम–प्रिय स्वरूप से मिलन की जो मैंने जी में ठानी थी बस इसी मिलन रूपी यज्ञ में मन का सब कुछ तपकर राख हो गया – कभी मिलन की पीड़ा, कभी सामीप्यता के आभास की शान्ति (शीत) सभी कुछ तपकर समाप्त हो गया है। लेकिन मेरे मालिक सफ़ल तरपण (हवन की सामग्री डालना) तो उस दिन सफल हो गया जिस क्षण मेरा अहं–भाव भी तप गया था। बस वही समय मेरी साधना की जीत का था। मेरे बाबूजी जो अभ्यास से नहीं हो पाया वह आपके ध्यान रहने ने कर दिया था।

3. कहावत है कि एक कीड़ा जो भूरे से रंग का होता है वह भौंरा बनने की साँची चाह में, जैसे भौंरा गुनगुनाता है वैसे ही गुनगुनाने की नक़ल करता है। जैसे–जैसे फूल पर वह भौंरा रहता है बिल्कुल उसी प्रकार हर तरह से उसकी ही तरह से बनने की चाह में एक दिन वह कीड़ा खुद को भूले हुये, भौंरे के ही ध्यान में रहते–रहते भूरे रंग से बदल कर काला हो जाता है अर्थात् उसका रंग भौंरे के ही समान हो जाता है और ध्यान में रहते–रहते वह अपना रूप भी भूल जाता है फिर वह यही गुनगुनाता फिरता है कि वह भ्रमर (भौंरा) ही है।

4. संध्या कहती है कि भक्ति–पथ पर बढ़ते हुये प्रेम की साँची परिभाषा मैंने यही पाई है कि जैसे मैंने ऊपर लिखा भी है कि मुझे सहज ही अपना ही ध्यान रखने पर ही प्रीति हो गई है। जानते हैं क्यों? क्योंकि ध्यान में भक्ति ऐसी समा गई हैं कि अपने रूप की जगह उनका ही प्रिय स्परूप दिखाई पड़ता है तभी तो अब ध्यान की रीति भी पलट गई है। इतना ही नहीं मेरे बाबूजी! अब तो यह हाल है कि जैसे साँचे सोने व मणि–मुद्रा में देखने पर अपनी तस्वीर दिखाई पड़ती है वैसे ही अब मुझे कण–कण में आपके ही दिव्य मुखारविन्द का दर्शन मिलता है – यही कारण है कि अपने में अब आपकी मौजूदगी (आविर्भाव) पाकर प्रेम में विह्वल होकर मैं चौंक–चौंक पड़ती हूँ। हे मालिक ! आज तो संध्या इसी बात पर आप पर बलि–बलि जा रही है कि मुझ सी बिटिया पर भी आपका कितना प्यार है।

देख्यो आली अस सनेह

1. देख्यो आली अस सनेह निज प्रभु को।
राशि कुलपति छाँड़ि गिरि सम, प्रीति कर लघु हरित तृन को।।

2. जदपि सम सब तेहि लगाये, पाँति–पाँति बहु बरन को।
तदपि ऐसी रीति उनकी, हृदय राखत दीन जन को।।

3. स्वामि त्रिभुवन रहनि सरल, सुशील समरथ–सिन्धु को।
नमत एकहिं बार प्रभु को, ढरत ताहीं अगम पद को।।

4. कहत सुनत न गुनत आवइ, है न होय कबहुँक अब अगको।
कौन उपमा देय 'सन्ध्या', राखि ले ऐ ईश जग को।।

व्याख्या

1. हे सखी! मैंने तो अपने बाबूजी महाराज का ऐसा प्रेम देखा है कि पर्वत के समान ऊँचे धनपतियों को छोड़कर मुझ सी हरे तिनके के समान बालिका को उन्होंने अपने पावन–स्नेह की कृपा दी।

2. मैं तो इतना ही जान सकी हूँ कि यहाँ (संसार में) तो सब बराबर ही हैं क्योंकि ईश्वर ने ही भाँति–भाँति की पंक्ति में सभी पौधों को लगाया है लेकिन उनकी कृपा की रीति तो हमेशा से यही रही है कि उन्होंने तो अपने हृदय में दीन–जनों को ही स्थान दिया है।

3. मैं तो यह देख रही हूँ कि आज मानों त्रिभुवन के स्वामी (ईश्वर) साक्षात् श्रीबाबूजी महाराज के दिव्यरूप में धरा पर उतर आयें हैं कितनी सरल एवं सादा रहनी है उनकी, यद्यपि दिव्य–आदि–शक्ति पर सामर्थ्य पाकर भी इतने शीलवान, दयामय हैं कि अभ्यासी के एक बार आत्म–निवेदन से भरे हुये प्रणाम करते ही ऐसे प्रसन्न हो जाते हैं कि उसे आगम–पद (सत्य–पद) पर ही प्रतिष्ठित कर देते हैं।

4. न तो इनके बारे में कुछ भी कहा जा सकता है, न कभी कुछ

सुना है और न इनका गुणानुवाद गाया जा सकता है और न उन्हें लय–अवस्था के बिना प्राप्त ही किया जा सकता है। इतना ही नहीं ऐसी दिव्य–विभूति न तो कभी धरती पर अवतरित हुई है ओर न कभी होगी। जानते हैं क्यों? क्योंकि कोई भी मानव–मात्र के लिये साक्षात्कार के अतिरिक्त ईश्वर–मिलन का लक्ष्य ही नहीं लाया है और न वतन (भूमा) की वापसी का नेह–निमंत्रण लेकर अपनी दैविक–प्राणाहुति–शक्ति का मानव–हृदय में प्रवाह देकर कोई उन्हें उठाने के लिये, ले जाने आया है। इतना ही नहीं कोई अवतार प्रकृति के सौंपे हुये कार्य के प्रतिरिक्त मानव के दैविक–उत्थान के हित, निवेदित होकर, न कभी आया है और न कभी आयेगा। आज तो आपकी 'संध्या' हार कर बैठी है कि किस उपमा से आप जैसे अनुपमेय को जोड़े। अब तो बस यही प्रार्थना है मेरे बाबूजी कि विश्व के समस्त प्राणियों के सहित विश्व को ही अपनी कृपा की शरण में रख लीजिये।

रे मन रहु अंतर के देश

1. रे मन रहु अंतर के देश।
जा दृष्टि में दीठि रही न, नैनन बदलो भेष।।

2. रोम–रोम अब गयो हिरानो, 'राम' भयो हृदयेश।
नहि परतीत रही अपने की, ना सुख शान्ति कलेश।।

3. गुन अवगुन की डोली सँवारी, विदा कियो निःशेष।
यह मन मेरे कहाँ विराजत, या घर या परदेश।।

4. कण–कण दरशन, कनकन वा छवि, दर्पन है सर्वेष।
'सन्ध्या' प्रभु सिरताज सिरानी, रहि गयो पाथर शेष।।

व्याख्या

1. संध्या कहती है कि अब तो दशा कहती है कि ओ मेरे मन! अब तो अंतर के देश (ईश्वरीय–साथ लेकर) में ही बस जा अर्थात् अंतर्मुखी होकर वही ठहर जा। क्योंकि मुझे तो मालूम है कि मेरी वाह्य–दृष्टि तो पथरा चुकी है क्योंकि मेरी आँखों ने अपनी वाह्य रहनी को बदल दिया है, अब तो इनमें मेरा मालिक ही समा गया है।

2. इतना ही नहीं जबसे मेरे राम (बाबूजी) मेरे हृदय के मालिक बन गये हैं तबसे लगता है कि मेरा कण–कण भी प्रियतम में ही विलीन हो गया है। मेरा तो यह हाल है कि मेरे लिये संसार में न कोई अपना है, और न कोई पराया ही रह गया है। ऐसा भी हुआ है कि अपने, पराये के भान के साथ ही सुख, दुःख, शान्ति, अशान्ति सबका ही भान मेरे लिये समाप्त हो गया है।

3. न जाने यह कैसा हुआ है कि लगता है कि गुण और अवगुण रूपी डोली में बिठाकर बचे–खुचे शेष मन को भी अब मेरी दशा ने विदा कर दिया है। अब तो इस मन का मुझे पता ही नहीं रह गया है कि यह अपने घर (मेरे अंदर) में है या परदेश (प्रिय के घर) चला गया है। यद्यपि यह उलटवासी भी तो इसके साथ हुई

है कि प्रियतम बाबूजी का लोक (जो परदेश के समान लगता था) अब इसको अपना घर लगने लगा है और अपना घर यानी मेरा अंतर अब इसे परदेश के समान लगने लगा है क्योंकि मालिक ने इसे सालोक्य की हालत में मिला जो लिया है।

4. मैं अपनी दशा के ही बारे में अब क्या लिखूँ कि अपने रोम–रोम में और बाहर ज़र्रे–ज़र्रे में मुझे अपने बाबूजी की विराट् छवि ही नजर आती है। इतना ही नहीं उलटवासी तो यह भी हुई है कि सर्वत्र ही व्यापने वाले वे ही मानो दिव्य दर्पण बनकर मेरे समक्ष में व्याप्त हो गये हैं जिनमें मात्र उनकी ही दैविक–छवि व्याप्त है। संध्या तो अब केवल इतना ही जानती है कि वह तो अपने सिर–ताज (माथे के मुकुट), सर्वत्र व्याप्त बाबूजी में ही समा गई है और धरती पर तो मानों इसका रूप मात्र एक पत्थर प्रतिमा के समान ही चल–फिर रहा है।

आज जीवन ढल रहा है

1. आज जीवन ढल रहा है।
मृत्यु क्षण–क्षण आ रही है, मान पल–पल जल रहा है।।

2. ज्योति जगमग जल उठी है, शमा तिल–तिल बुझ रही है।
कौन आयेगा स्वजन अंधेर नगरी, अब उजाला जा रहा है।।

3. मौन हो जाओ, पथिक, इस देश में, सम्भ्रान्त युग में,
अब न कहना 'हाय' अपने देश में, जब सत् मधुर–तम आ रहा है।।

4. किन्तु आयेंगे शलभ, फिर भी इधर कुछ सूँघ कर।
सुरभि–सौरभ मधुर रस में, किन्तु अब जो मिलन अंतिम आ रहा है।।

5. अंग संगम मिट रहा है सुप्त–शक्ति–मय धरा है।
पर रहो इस देश में सुंदरि अभी तुम, संधि युग जो आ रहा है।।

6. मौन अब भी गा रही है, जिन्दगी जो सो रही है।
सप्त–स्वर की गुनगुनाहट सुन न सकता, युग युगान्तर सो रहा है।।

7. जग उठो मानव सदा जगते रहो तुम।
फिर न जल सकता कभी यह (दीप्त दीपक) आज क्षणं जो जल रहा है।।

8. अब तभी आयेगी 'सन्ध्या', पुनः नभ–उद्यान में जब।
चन्द्र बन चमके मधुर उच्छ्वास तेरा, दिशि–विदिश में भर रहा है।।

व्याख्या

1. अब मुझे ऐसा लगता है कि मानों भौतिक–जीवन का आभास बराबर कम होता जा रहा है। ऐसी दशा भी लगती है कि जिन्दा तो हूँ फिर भी मानों मृत के सदृश रह रही हूँ क्योंकि मान पाने पर भी मुझे खुशी का आभास नहीं होता है तो दशा यही कहती है कि क्रमशः मान की प्रतीति अब श्री बाबूजी के लिखे अनुसार बीजदग्ध की दशा में दग्ध (भस्म) होती जा रही है।

2. एक अजीब बात यह हुई है कि ईश्वरीय–प्रकाश रूपी शम्मा जो

(दीप) मेरे हृदय में प्रकाशित थी उसने क्रमशः सारे सिस्टम के एक–एक कण को तो ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित कर दिया है और अब इसका ध्यान भी समाप्त–प्राय होता जा रहा है। अब भला आप बताइये कि दैविक–प्रकाश रूपी शम्मा के विलीन हो जाने पर मेरा प्रिय अब हृदय में कैसे आयेगा (अगर होगा)।

3. आखिर को मेरा मन ही मुझ से कह बैठा है कि हे पथिक (अभ्यासी) अब तू मौन होजा–उन्हें मत पुकार क्योंकि अब यह देश (तेरा हृद–देश) सत्–युग के समान स्थिति पा गया है इसमें पुकार कर तू अपने मन की शान्ति को बाधित न कर। यहाँ तक कि मौन ही नहीं अब तो तेरे हृदय में एक आह भी न उठने पाये क्योंकि ईश्वरीय–युग की तमावस्था का (अर्थात् जब प्रकाश सतत् हो जाता है तो प्रकाश का एहसास नहीं होता है) आगमन हो रहा है।

4. मन की दशा कहती है कि यह तो हो सकता है कि गुण–अवगुण रूपी पतिंगे (शलभ) प्रकाश का एहसास सूँघ कर इस पर बलिहार होने आ सकते हैं। क्योंकि तेरी प्रेममयी दशा के मधुर सौरभ का एहसास तेरे एहसास में कही शेष है क्योंकि वे जानते हैं कि तेरे हृद–देश (**heart regin**) के मालिक (ईश्वर) में लय होने (मिलन) की बारी अब आगई है।

5. अब तो लगता है कि शरीर की सुधि भी याद से मिटती जा रही है और हृद–देश की सारी शक्ति (दशा) मानों सुषुप्तावस्था में डूब गई है इसलिये अभी कदाचित् मुझे इस देश में थोड़ा रूकना पड़ेगा क्योंकि अभी संधि–अवस्था अर्थात् वर्तमान में पाने और आगेवाली दशा के आने की मध्य की अवस्था है। जानते हैं क्यों रूकना पड़ेगा? इसलिये कि हृद–देश की सुषुप्तावस्था की याद अभी शेष है।

6. यह सत्य भी हो गया है कि मेरी दशा सुषुप्त (मौन) हुई भी जागती तो है यानी दशा को गा तो सकती है क्योंकि लिख रही है और यह भी महसूस कर रही है कि शरीर का एहसास खोगया है। यद्यपि सिवाय मेरे इस सुषुप्तावस्था की गुनगुनाहट को कोई

पहिंचान या सुन भी नहीं सकता हैं जानते हैं क्यों? क्योंकि मुझे तो अब ऐसा प्रतीत होता है कि यह मेरा अंतर तो मानों युग–युगान्तर से सोया हुआ ही है।

7. दशा तो अब मुझसे यही कह रही है कि एक बार जागकर मुझे निहार लो, मेरा आनन्द ले लो क्योंकि जो आज तेरी हालत है वह लौटकर फिर कभी नहीं आयेगी।

8. किन्तु बाबूजी, आपकी संध्या तो अब यही कहती है कि हे दशा, अब मैं तो तभी होश में आऊँगी अब मेरे आप (राम) चंद्रमा के सदृश मेरे समक्ष में पुनः आयें और अपनी दिव्य–श्वाँसों (प्राणाहुति का प्रवाह) के सेंक से जो आज चारों दिशाओं को दिव्यता से भर रहा है उस के प्रवाह से मुझे भर कर आप स्वयं मुझे उठायें।

मन मोहन मूरति आनि बसी

1. मन मोहन मूरति आनि बसी।
   साँझ समय निकसी जू मैं आँगन, देह धरे मानो ईश लसी।।

2. मैं हूँ सर्वेश निहारे अली, उपमा कह देऊँ ठगी सी ठगी।
   सब बूझति काह दशा कह बीर, फिरत क्यों मूर्ति ज्यों ठाढ़ि पगी।।

3. अब काह कहूँ सजनी तोहिं सों, नन्दलाल कियो कछु टोना ठगी।
   अब नाहिं निकारे निकसत है, निकसै क्यों तिरछी अड़ी सो अरी।।

4. सब ओर आनन्द–आनन्द बस्यो, दुंदुभि चहुँ ओर छई सो छई।
   सब भाँति मनोहर मूरति वह, 'सन्ध्या' जेहि आज बेहाल करी।।

व्याख्या

1. संध्या कहती है कि ओ बाबूजी! मैं आपके मिलने से पहले एक शाम अपने आँगन में बैठी थी तो आकाश की ओर अचानक मेरी दृष्टि मानों किसी का दर्शन पाकर स्थिर हो गई और मुझे लगा कि मानों स्वयं ईश ही शरीर धारण कर प्रकाश में मेरे समक्ष खड़े हैं बस उस दिव्य–छवि को हृदय में लेकर मेरा जी मानों मुझे भी छोड़कर मेरे अंतर में कहीं छुप गया।

2. आज भी मुझे बार–बार यही कहना पड़ता है कि आपकी उस दिव्य–छवि में मानों सर्वेश्वर का ही दर्शन पा लिया था। उपमा के लिये कोई शब्द न मिलने से लेखिनी ने बार–बार अपने बाबूजी महाराज के लिये 'अनुपम' शब्द का ही प्रयोग किया है क्योंकि मुझे आज भी स्मरण है कि मैं तो विस्मृत हुई ठगी सी ही निहारती रही। आप कब ओझल हो गये मुझे होश ही नहीं रहा। होश के लौटने पर मुझे लगा कि आज युग में यही दिव्य–विभूति धरा पर प्रगट हुई और मन उसे ही पुकार रहा है किन्तु 'मालिक' ने प्रतीक्षा की घड़ियों को मात्र घंटों में ही बदल दिया और मुझे निहालकर दिया। घर में मुझसे सभी पूँछते थे कि कस्तूरी तुझे क्या हो गया है? लगता है कि तू

कहीं खो गई है—तेरी दृष्टि मानों कहीं स्थिर होकर रह गई है।

3. हे भाइयों मैं किसी से क्या कहूँ कि जैसे नंद के लाल ने समस्त पर मानों अपनी दिव्य–छवि का टोना सा कर दिया था आज आपकी इस दिव्य–छवि ने मानों मुझ पर टोना सा ही कर दिया है। जब साक्षात् में सशरीर आपका घर में पदार्पण होने पर भी जो दर्शन पा रही हूँ तो भी उस दैविक–आपकी विराट्–छवि को भुला नहीं पा रही हूँ। कदाचित् इसलिये कि यदि छवि सीधी हृदय में होती तो आपके समक्ष स्वरूप को हृदय में समेट लेती। लेकिन अब तो लगता है कि मेरा जी तुझे अंतर की गहराई एवं सूक्ष्मता में कहीं ऐसा ले गया है कि मानों तिरछी होकर तेरी वह दिव्य–छवि कहीं समाकर अड़ गई है।

4. और! तबसे दशा क्या है कि चारों ओर परमानन्द ही परमानन्द की वर्षा हो रही है। इतना ही नहीं मन के द्वार पर मानों प्रेम भरी आपके स्वागत की शहनाई बज रही है। मानों अंतर के कण–कण में तेरे आने की परमानन्द की शहनाई समस्त के लिए आनन्दमई हो उठी है। इतना ही नहीं बाबूजी आपकी उस विराट्–मधुर–छवि ने मानों संध्या की सुधि–बुधि को खोकर बेहाल कर दिया है।

या मन मधुर मूरति पगी

1. या मन मधुर मूरति पगी।
जित जाऊँ तित संग ही डोले, मन ज्यों हृदय लगी।।

2. जा लगि डीठि लगी अंतर की, सोई जंजीर खगी।
निर्गुण सगुण दोनों ही दीसत, प्रीति जो महँगी ठगी।।

3. काह करूँ कित जाऊँ सजनी मोरी, ठाढ़े नाहिं बगी।
जदपि न नींद–भूख निशि–वासर, लागे अधिक सगी।।

4. लाख उपाय करत बाहिर के, अंतर ज्योति जगी।
ठाढ़ी बेहाल पुकारत 'सन्ध्या', कबहुँ सुनो ऐ जोगी।।

व्याख्या

1. एक विशेष अवस्था का भेद मैंने यहाँ जान पाया है कि मेरे मालिक की मधुर–छवि मेरे ख्याल में अर्थात् अवचेतन मन (सब–कॉन्शस माइन्ड) में ही नहीं बल्कि अंतर मन में मिलकर ऐसी एक हो गई है जैसे गुड़ और शीरा। यही कारण है कि जिस तरफ भी मैं जाती हूँ मुझे ऐसा लगता है कि मेरे हृदय में समाई हुई वह छवि मेरे साथ ही चलती रहती है।

2. इसका कमाल तो देखिये कि मेरे अंतर में जहाँ भी, जिधर भी यह टिक जाती है वहीं भौतिक कनेक्शन पिघल कर टूट जाता है। यही कारण है कि मुझे अपने बाबूजी के निर्गुण–स्वरूप (विराट एवं सर्वव्यापी स्वरूप) तथा समक्ष में प्रगट इनके सगुण–रूप दोनों का ही दर्शन मिल रहा है। बस यदि कुछ मँहगा पड़ा है सहज–मार्ग में तो यही कि हृदय में इनसे प्रीति का लगाव पैदा हो गया है जो बड़ा मँहगा पड़ रहा है। जानते हैं क्यों? क्योंकि इनके दिव्य–मुखारविन्द का दर्शन पाकर यह (प्रीति) भी ठगी सी ही विस्मृत–अवस्था में खड़ी रह गई है।

3. अब तो मेरी सखि, मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ कुछ भी समझ में नहीं आता है – इतना ही नहीं एक स्थान पर खड़ा भी तो नहीं

रहा जाता है बस मालिक के निकट जाना हे और चलते ही जाना है। अब तो यह दशा है कि न तो रात की नींद ही मुझे स्पर्श करती है और न भूख, प्यास ही मेरा स्पर्श पाते हैं। इतना ही नहीं रात्रि, दिन की भी मुझे अब प्रतीति नहीं हो पाती है। जानते हैं क्यों? क्योंकि मेरे अंतर ने तो मालिक की प्रीति से ही सगे–पन (Real) का सम्बन्ध जोड़ लिया है।

4. अब तो मेरी कुछ ऐसी दशा है कि वाह्य में इसे रिझाने के (मन को लगाने के) बहुत उपाय करती हूँ परन्तु मेरे अंतर में ऐसी दिव्य–ज्योति जागृति हो गई है कि बाबू जी की संध्या बेहाल हुई, बेतहाशा आवाज दिये जा रही है कि अंतर तू जाग जा क्योंकि वाह्य (संसार) से भी तो तुझे रस्म बनाये रखना है। मालिक की कृपा से मेरा विश्वास है कि मेरी पुकार वह जोगी (मन) जरूर कभी सुनेगा।

माई ढूँढ़न जाऊँ कित ठौर

1. माई ढूँढ़न जाऊँ कित ठौर–ठार।
मैं तो घरहिं पायो सिरमौर सिंगार।।

2. निशि–दिन पल–छिन संग ही डोलूँ।
सद्गुरू साँचो मिल्यो करतार।।

3. जीवन नैया छोड़ खेवैया।
फ़िकर नहीं डूबय मझधार।।

4. डूबत मिलऊँ, उबरे दरशन।
दुहूँ हाथ मोदक निरझार।।

5. को बनाय सक को बिगार सक।
आवत प्रश्न न एक अगार।।

6. हँसत–खेलत सब पन बीते।
'सन्ध्या' बलि–बलि पुनः बार।।

व्याख्या

1. संध्या कहती है कि मैं तुम्हें कहाँ ढूढ़ूँ क्योंकि मेरे लिये तो तुम्हारे बिना अब कहीं भी ठहर पाने के लिये जगह ही नहीं है। सच तो यही है कि मैंने तो अपने प्रिय को, अपने सरताज को, अपने मन के श्रृंगार को अपने ही घर (अंतर) में पालिया है।

2. मेरा तो यह हाल है कि मैं तो दिन–रात, हर पल, हर क्षण अपने बाबूजी महाराज के साथ ही में रहती हूँ क्योंकि मुझे तो ईश्वर ने साँचे–सद्गुरू (ईश्वर से मिलानेवाले) से मिला दिया है।

3. अब तो मेरा यह हाल है कि अपनी जीवन–नैया को इसके खेवन–हार (सद्गुरू) के वरद्–हस्त–कमलों में सौंप दिया है अब तो मुझे इसका ख्याल तक नहीं रह गया है कि यह नैया भव–सागर में डूबेगी या उबर जायेगी।

4. इसका एक कारण यह भी है कि अपने बाबूजी का साथ पाकर मुझे लगता है कि यदि डूब गई तो उनमें ही मिल जाऊँगी और यदि उबरी तो उनका ही दर्शन मिलेगा। अब तो बाबूजी, आपकी कस्तूरी के दोनों हाथों में लड्डू ही है।

5. अब तो मेरी यह दशा है कि मन में इतनी शक्ति आगई है कि लगता है न तो मेरा कोई कुछ बिगाड़ सकता है और न कोई उनके सिवा मेरा बना ही सकता है। अब तो कोई प्रश्न मेरे आगे है ही नहीं।

6. सत्य तो यही है कि मेरा तो बाल्यकाल से हर पल मानों हँसते, खेलते ही बीत गया है – मानों कभी कोई कष्ट आया ही नहीं है संध्या कहती है कि मैं तो अपने बाबूजी महाराज के छवि पर ही वारी जाती हूँ और बार–बार उन पर ही बलिहारी जाती हूँ।

तो बिन ऐसी कौन करे

1. तो बिन ऐसी कौन करे।
   मोहिं देखत तारि डारे, गुन–औगुननि भरे।।

2. छकी प्रीति फिरत दरशन को, ठौर नहीं हियरे।
   शान्त, सहज–सन्तोष पायो, ले चरन जियरे।।

3. ऐसी ज्योति जलीं अंतर की सहज–मार्ग निखरे।
   राजा भये कहावत जोगी, मते सकल बिखरे।।

4. कहि प्रणत 'प्रभु–पाहि' आये, शरण खोटे–खरे।
   दान अक्षय दियो 'सन्ध्या', नहिं संसार डरे।।

व्याख्या

1. हे मेरे श्री बाबूजी! मानव–मात्र का हित करने वाले की मिसाल आपके अतिरिक्त भला कहीं मिल सकती है। आपने समर्थ–सदगुरू श्री लालाजी महाराज के पृथ्वी पर उतरने के दिन की (जन्मदिन की) खुशी का बहाना लेकर गुण–अवगुण से भरे हुये कितने ही अभ्यासियों को चाहे वे जीवित हो या मृत हों भव–सागर से पार होने की गति (फ्रीडम फ्राम रिबर्थ) को प्रदान किया है और इस सत्य को मुझे दिखलाया भी है।

2. मेरा तो यह हाल है बाबूजी कि प्रेम में छके (डूबे) हुये मेरे हृदय में मात्र आपकी दिव्य–छवि के खुद मेरे ठहरने के लिये भी स्थान नहीं रह गया है–अब तो हृदय आपकी छवि में इतना डूबा हुआ है कि आपके दरश की प्यासी गति भी शान्त और सहज–संतोष पाकर आपके पावन–चरण–द्वय को जी में सहेज कर स्थिर हो गई है।

3. हे मेरे बाबूजी! आपने मेरे हृदय को दिव्य–प्रकाश से प्रकाशित कर दिया है और सहज–मार्ग साधना द्वारा अंतर में ऐसा निखार आया है कि ईश्वरीय–ध्यान में डूबे रहने के सतत्–अभ्यास के अतिरिक्त मानों बाल्यपन से अपनाये गये सारे साधन इस

ध्यान में ही डूबकर एक हो गये हैं। और अब? सहज–मार्ग–साधना को अपनाने पर आपकी पावन–अपनाहट भरी निगाह का पालन पाते हुये आपकी प्राणाहुति के प्रवाह में निरंतर आंतरिक स्नान पाकर आज आपकी कस्तूरी राजयोगी कहलाने लगी है।

4. इतना ही नहीं आपकी संध्या तो यही कह रही है क्योंकि इसने ऐसा ही देखा और पाया है कि सच्चे दिल से जो भी सहज–मार्ग–साधना को अपना कर आपकी शरण में आये हैं वे चाहे अच्छे–बुरे कैसे भी हों उन्हें आपके वरद्–हस्त–कमल के साये में अटल, परम–भक्ति का वरदान मिला है। संध्या कहती है कि हम अभ्यासियों के हृदयों को मानों ऐसे दृढ़–विश्वास का अभयदान आपकी पावन–प्राणाहुति–शक्ति के प्रवाह द्वारा सहज ही मिला हुआ लगता है कि हमारे डग–आध्यात्मिक–क्षेत्र में सदैव बढ़ते ही जायेंगे।

अब शून्य सकल दिशि सकल बाट

1. अब शून्य सकल दिशि सकल बाट।
निज साहिब लगि, छाँडे अब सगरे ठाठ।।

2. बाट–बाट घर–गली अथाई, लोग कहत हैं बात नई–नई।
किन चित देंऊँ सजनी सौं तेरी, जग की सुनत सब सजी लाट।।

3. सब रंगन के रंग सजो री नित नवीन मैं पहिर चूनरी।
राजा देश नित जाये गूजरी, मन मलीन तन धरत पाट।।

4. तन जू छूटा मान करत में, हृदय छूटा ध्यान करत री।
जोगिन भई पुकारत 'सन्ध्या' आओ रे जोगी हूँ तिहारहिं घाट।।

व्याख्या

1. मेरी तो अब कुछ ऐसी दशा हो गई है मालिक, मेरी दृष्टि तो इतनी शून्य (सांसारिकता से) हो गई है कि मेरे लिये तो मात्र एक ही दिशा आपके दर्शन की प्रतीक्षा ही रह गई है और एक ही मार्ग, सहज–मार्ग ही रह गया है। इतना ही नहीं मुझे लगता है कि प्रियतम को पाने की खातिर मेरे मन ने सारे ठाठ (सांसारिक–इच्छायें, यहाँ के ठाट–बाट) सभी कुछ स्वतः ही मानों त्याग दिये हैं।

2. अब तो कोई कुछ भी कहे, राह में, गलियों में, चाहे बातें नई हों या पुरानी लेकिन सजनी (ओ मेरी दशा) तेरी सौगन्ध अब कोई भी बात कभी मेरे मन तक नही पहुँच पाती है क्योंकि अब तो लगता है मानों मैं नहीं बल्कि मेरी प्रतिमा ही धरा पर चल रही है और सुन रही है।

3. हे सजनी (मेरी दशा) तुझे तो मालिक ने अपने ही तमाम रंगों से सजाया है। इस प्रकार मैं तो उनके द्वारा बख़्शी हुई दशाओं की नित्य नई चूनर (श्रृंगार) से सजती हूँ। इतना ही नहीं नित्य नवीन श्रृंगार से सज कर मैं तो रोज़ ही अपने मालिक के देश (सालोक्यता की दशा) में विचरण करती हूँ।

अब जब कभी दृष्टि नीचे (पृथ्वी पर) देखती भी है तो मन को बहुत बुरा लगता है।

4. 'संध्या' कहती है कि मुझे शरीर का भान तो उसी दिन छूट गया था जिस दिन मन ने अपने बाबूजीमहाराज को अपना भान (अपने होने की प्रतीति) समर्पित कर दिया था और अपने हृदय का भान उस दिन ही छूट गया थ जिस दिन ध्यान ने हृदय में आपको धारण किया था। हे बाबूजी! आपकी संध्या तो अब योगिन (वैरागिन) हो गई है और मात्र आपको ही पुकार (याद कर) रही है कि हे राजयोगी, सहज–मार्ग के अधिष्ठाता! मैं तो अब तेरे ही घाट पर खड़ी हूँ – आप ही मेरी आध्यात्मिक–नैया के खेवइया हैं।

कब लौं करोगे इत नैन प्रभु जी

1. कब लौं करोगे इत नैन प्रभु जी।
अँसुअन भींजी सारी चुनरिया, छिन नहिं आवत चैन प्रभु जी।।

2. ऐसी बान पड़ी तड़पन की, रोम–रोम भई रैन प्रभु जी।
आई सुनत हौं परम कृपालु सुन्यो कृपालु कान प्रभु जी।।

3. सारी नगरिया तोरे बिन सूनी, तबहूँ धर्यो है मौन प्रभु जी।
हरे–भरे सब देश उजरि गये, तुम नहिं आये भौन प्रभु जी।।

4. चलत चली जाऊँ, पहुँचूँ तो पहुँचूँ, छोड़ूँ न तिहारे चरनैन प्रभु जी।
ऐसी रीति न देखी अब तक, मेरी बार भये मौन प्रभु जी।।

5. तन भी छोड़ूँ, मन भी छोड़ूँ, धरूँ तिहारोय ध्यान प्रभुजी।
कितेक दिनन ते बाट जोवती, 'सन्ध्या' बचे हैं ये प्रान प्रभुजी।।

व्याख्या

1. संध्या कहती है कि हे बाबूजी! मेरी प्रतीक्षारत आँखे पूँछ रही हैं कि अपनी बिटिया की ओर कब आपकी कृपा एवं प्यार भरी निगाह का रुख घूमेगा। मेरे अंतर रूपी चूनर का एक–एक तार आपकी बाट निहारते–निहारते प्रेमाश्रुओं में भींग गया है और समक्ष में पाये बिना मुझे एक क्षण को भी चैन नहीं मिल पाता है।

2. इतना ही नहीं आपसे मिलने की तड़पन की तो मुझे ऐसी बान (आदत) पड़ गई है कि लगता है मेरे लिये दिन के उजाले का कोई महत्व ही नहीं रह गया है। हे मालिक! आपतो परम कृपालु हैं सुनकर ही तो मैं आपके सहज–मार्ग में आई हूँ। अब देखें कब मेरी तड़पन की पुकार आपका स्पर्श पायेगी।

3. ओ मेरे बाबूजी! अब तो आपके बिना सारा संसार ही मेरे लिये सूना हो गया है। कहीं कुछ भी अच्छा नहीं लगता है – यहाँ तक कि आपकी यह बिटिया भी आपके बिना सूनी है अर्थात् मुझे खुद से भी कोई रूचि या लगाव नहीं रह गया है। तब भी आप मौन

क्यों हैं? मेरे देखते ही देखते मेरे घर (अंतर) बाहर (संसार) सभी का लगाव (आनन्द) उजड़ गया है फिर भी आप का अपने इस घर (मेरे हृदय) में अब तक आविर्भाव क्यों नहीं हुआ है? क्या बात हो गई है।

4. मैं तो अपने सहज–मार्ग–साधना में चलती ही जाऊँगी। मुझे इसका भी विचार नहीं है कि मैं लक्ष्य तक पहुचूँ या न पहुँचूँ–मैं तो बस आपके चरणों को ही पकड़े रहूँगी। मेरे मालिक! आपकी कृपा की रीति में ऐसा तो कभी भी नहीं देखा गया है कि, आपको पुकारने में, आपके आने में देरी हो जाये, आप मौन रहें, आखिर मेरी बार ही आपकी कृपा की वह रीति क्यों बदल गई है।

5. संध्या तो बस इतना ही जानती है कि आपकी दिव्य–छवि के ध्यान में डूबी हुई मुझे, न अपने तन की सुधि है न मन का ही पता है कि मेरे अंदर मन नाम की कोई चीज है या नहीं क्योंकि अपने तन–मन का ख्याल आते ही आप ही मेरे समक्ष प्रत्यक्ष हो जाते हैं। आपकी संध्या तो बस अब इतना ही कह रही है कि आपके आविर्भाव की प्रतीक्षा में मात्र मेरे प्राण ही कहीं अटके हुये हैं कि आप आयेंगे जरूर।

जाग्यो री माई अभिअन्तर को जगाय

1. जागो री माई अभिअन्तर को जगाय।
राजरोग मोहे ऐसो लग्यो री, पल–पल लोनी लाये।

2. पाथर गल्यो, सूक्षम मिल्यो, कारन सरि–सरि जाय।
अब तोहि कहा कहौं बाला री, अंतर पसीजो जाय।।

3. राग–रोग दोनों ही उमगे, रोवाँ अनंद भयो जाय।
तृन–तृन करि जब चूनि लयो है, नाम मुकुत होय जाय।।

4. काह करौं यह दीठि ठगी जो, छिन न चैन लियो जाय।
शान्ति–वेष तें उबरी गुजरिया, पल–पल जाये बिकाय।।

5. इत हूँ अनंदम् उतहूँ उमंगम्, बीज परी है हाय।
कौन देश में बिराजे हो प्रभुजी, 'संध्या' तिल–तिल जाय।।

व्याख्या

1. मेरे 'मालिक', मैं तो बस इतना ही जानती हूँ कि आपके द्वारा पाई हुई प्राणाहुति का हृदय में प्रवाह पाकर ही मेरा कुल अंतर जागृत–अवस्था में आ गया है–मानों साक्षात्कार की प्राप्ति के हित सजग हो उठा है और अंतर–मन वह तो आपके–पावन आविर्भाव की प्रतीक्षा में सतत् ही सजग रहता है। ईश्वर–मिलन की तड़पन की पीड़ा राजरोग (क्षय–रोग) की तरह से मुझे ऐसी लग गई है जो आपकी छवि को स्वयं में उतारती जा रही है और मेरे होने के भाव (याद) को तिल–तिल करके गलाती जा रही है।

2. हे बाबूजी! आपके ध्यान में डूबे रहने के कारण आपकी दिव्य–शक्ति ने मानों मेरे भौतिक–शरीर के ध्यान को भी भुला दिया है और सूक्ष्म–शरीर के भी गल जाने पर अपने में ही लय कर लिया है अर्थात् मालिक ने मुझे लय–अवस्था प्रदान कर दी है। इतना ही नहीं अंतर में आपके दैविक–आविर्भाव की प्राप्ति ने, सामीप्यता के सेंक ने अब कारण शरीर को भी गलाना शुरू कर दिया है। अब

तो भला मैं क्या कह सकती हूँ कि मेरा सारा अंतर (कण–कण) भी मानों तेरे प्रेम में डूबे अश्रुओं से पसीज उठा है।

3. अब दशा तो यह है कि ह्रदय में आपका प्रेम और लय अवस्था दोनों की ही ऐसी बाढ़ आ गई है कि मेरा रोम–रोम मानों रोमान्चित हो उठा है। मैंने पाया है कि जब तेरे प्रेम की लोनी ने मेरे कण–कण से अहं (मेरे होने के भाव) को चुन लिया (खा लिया) है तभी मेरे बाबूजी महाराज ने लिखा था कि "लालाजी का शुक्रिया है जो तुम्हें लिबरेशन (मुक्ति) की अवस्था प्रदान कर दी है जो दैविक से योग पाये हुये हैं।"

4. हे मालिक! आपकी दिव्य–छवि का दर्शन पाकर मेरी दृष्टि ठगी (आपने को भूली) सी रह गई है जो मुझे क्षण भर भी चैन नहीं लेने देती है। अब तो ध्यान में जो शान्ति मुझे मिलती थी–यहाँ तक कि ऐसा लगता था कि मैं स्वयं शान्ति–स्वरूप ही हो गई हूँ उस शान्ति से भी मैं परे हो गई हूँ। अब तो लगता है कि मानों हर पल मैं किन्हीं दिव्य–हस्त–कमल–द्वय के हाथों बिकी जा रही हूँ।

5. संध्या कहती है कि अब मेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं ऐसी दशा हो गई है। पीछे की दशा की याद आती है तो लगता है शान्तिमय–आनन्द से भरी हुई हूँ और वर्तमान दशा हर क्षण उनकी शक्ति से आगे बढ़ने की उमंग में भरी रहती है। यों तो भक्ति के बीज की अवस्था तो वियोग की याद से तड़पने वाली होती है। हे मेरे मालिक् सालोक्य की दशा में भी, आपसे मिलन नहीं हो सका तो आप ही बतायें कि आपका देश (हमारा वतन) कहाँ है और कैसा है जल्दी बतायें क्योंकि संध्या तो तिल–तिल करके मिटती (लय होती) जा रही है।

एक अचिरिजु मैं निहारो

1. एक अचिरिजु मैं निहारो।
जगत दीखत सुपन मेला, जात खटकहिं सारो।।

2. नैन फूट्यो श्रवन छूट्यो, अपन पै सब हारो।
ऐसी दर्यो पीवे दरशन, जिवत एहि सहारो।।

3. नहिं अगम, नहिं सुगम पावत, पंथ पचि–पचि हारो।
लखत ज्योति जो श्री कृपा की, जोग जेहि लगि धारो।।

4. बकी, जकी, बिरूझानी डोलत, टरत जाहि पहारो।
'संध्या' प्रभु अब कबरे मिलोगे, हँसत लोग कहि बावरो।।

व्याख्या

1. मैं तो देख रही हूँ कि मानों मेरे समक्ष में अचरज की दशा फैली हुई है। अचरज की दशा में यह भी तो है कि संसार मुझे स्वप्न–वत् एक मेले की भाँति ही लगता है–मानों स्वप्न में मेला (भीड़) देख रही हूँ। अब किसी तरह की कोई चिन्ता मुझे स्पर्श नही कर पाती है।

2. दशा ने तो मानों मेरी नैनों की ज्योति को एवं श्रवण करने की शक्ति को हर लिया है। जानते हैं कैसे? इस तरह से कि मेरे नैनों की ज्योति में मेरे बाबूजी महाराज की दिव्य–छवि के अलावा कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। कानों का यह हाल है कि कोई कुछ भी बोले मुझे तो अपने बाबूजी की ही मधुर आवाज प्रतीत होती है। क्योंकि अपने होने का भाव ही मुझे छोड़कर चला गया है। अब तो मेरे मालिक–ने मेरे जीवन को कुछ इस तरह ढाल (सँवार या तराश) दिया है कि मुझे मात्र उनका ही दर्शन समक्ष में मिलता रहता है। बस तो आपकी कस्तूरी का जीवन इस परम–प्रिय दशा के सहारे ही मानों जी रहा है।

3. मैंने तो साधना के कठिन पथ पर चलकर और सहज–मार्ग के सरल–मार्ग पर चलकर कठिन से कठिन परिश्रम करने पर भी

स्वयं की साधना से कुछ नहीं पाया है। बल्कि ओ बाबूजी! आपकी मेरे हृदय में जलाई ईश्वरीय–प्रकाश की दिव्य–ज्योति से ही (जिसकी प्राप्ति के हित जोग साधा था अथवा साधन रूपी योग को साधा (चरणक्रिया) था, अपनाया था) आज मेरी साधना धन्य हो सकी है।

4. दैविक–साक्षात्कार की खोज में होश गँवाये अथवा, खुद की सुधि–बुध भूली कभी देरी लगने से कुछ बोल भी देती हूँ जैसे (आप कितने निष्ठुर हैं आदि..)। यहाँ तक कि किसी का बोलना भी मुझे नहीं सुहाता है–लगता है कि चाहूँ तो पहाड़ को भी उसके स्थान से ढकेल सकती हूँ किन्तु आप कब, और कैसे मिलेंगे यही नहीं समझ पाती हूँ। 'संध्या' के बाबूजी आप ही बतायें कि आप कब मिलेंगे क्योंकि लगता है कि लोग भी मुझमें सांसारिक–रूचि न पाकर हँसते होंगे कि कैसी बावली है कि इसे सांसारिक–मेले में कोई रूचि या लगाव ही नहीं है।

कौन जाहि अब शीष नवाऊँ

1. कौन जाहि अब शीष नवाऊँ।
घर न बहिर, परदेश्–देश नहिं, जेहि भ्रमि–भ्रमि भरमाऊँ।।

2. जड़, चेतन, जल, थल सब पेखत, पल–पल जाय बिकाऊँ।
कूल बावरी सब सुधि भूली, छाँह आपनिहिं पाऊँ।।

3. नहिं पृथी, नहिं पक्षी नभ के, कूत बिला, सब ठाऊँ।
कोऊ न रहत मैं नित संग खेलूँ, लेऊँ पीव का नाऊँ।।

4. ऐ कलाधर! क़ा सब रंग रीते, रीती कूँची ल्याऊँ।
मीन पुतरियन रेख दई ही, मद्धिम जाय सिराऊँ।।

5. क्षुधित न तृषित है जनम–मरण से, न्याति न कुल की झांई।
'सन्ध्या' दासी जनम–जनम की, साधो मिलन को जाऊँ।।

व्याख्या

1. मेरी तो यह दशा है कि अब मेरे समक्ष कोई मानों है ही नहीं, तो फिर यह सिर, कहाँ और किसके लिये, किसके आगे झुके। न जाने मुझे क्याहो गया है बाबूजी, कि मुझे न तो कोई घर दिखाई पड़ता है और न यह पता लगता है कि मेरा देश कहाँ है, मैं कहाँ की रहने वाली हूँ जिसमें अपनाइत के भ्रम में भूली हुई मैं अब जहाँ–तहाँ भटकती (जाती, आती) रहूँ।

2. इतना ही नहीं चाहे जड़ हो या चेतन हो, पृथ्वी हो या पानी हो मुझे सब एक से ही लगते हैं – अलग भाव ही कोई नहीं है। बस यही लगता है कि सबसे ही चिपट जाऊँ, सभी पर बलिहार हो जाऊँ। कुँआं, तालाब सभी की सुध (पहिंचान) ऐसी भूल गई है मानों समस्त में मुझे अपना ही दैविक दर्शन मिल रहा है।

3. मैं क्या लिखूँ कि मेरी दशा ऐसी है कि चाहे पृथ्वी के पशु हों अथवा नभ में उड़ने वाले पक्षी हों, चाहे कुत्ता, बिल्ली ही क्यों न हों–मेरे लिये तो मात्र 'मालिक' के दैविक–स्परूप के कोई अन्य

रूप ही नहीं रह गया है–मैं सभी के संग खेल और खा भी सकती हूँ – यह भी तो दशा हो गई है कि समस्त के लिये एक नाम 'बाबूजी' ही याद रह गया है और सब कुछ बिसर गया है। इसलिये इनके नाम के साथ उनके दैविक–स्परूप के पसारे में मुझे किसी के साथ खिला दीजिये, खालूँगी और खेल लूँगी किन्तु एक अचरज यह भी तो सुनिये कि उन्होंने इस हालत से गुजरते हुये भी इसे (हालत को) वाह्य में कभी भी क्रियान्वित नहीं होने दिया ताकि 'उनकी' कस्तूरी पर लोग बावरी होने की उँगली न उठा सके।

4. ओ बाबूजी! आपकी बिटिया, तो बस आपसे यही पूछती है कि ओ दिव्य–कलाकार, क्या आपकी तूलिका सब रंगों से खाली हो गई है जो इसने मेरी आँखों की पुतलियों में मात्र रेखा ही दी है रंग नहीं भरे हैं। वह भी लगता है कि धीरे–धीरे दशा का यह एहसास भी ऐसा फीका पड़ता जा रहा है कि लगता है कि सब समाप्त हो जायेगा।

5. 'संध्या' कहती है कि ऐसी दशा है कि न तो कभी भूखी लगती हूँ और न कभी प्यासी ही होती हूँ। इतना ही नहीं ऐसा लगता है कि मानों जन्म–मरण से मेरा कोई नाता ही नहीं है। न कुल का ज्ञान है, किस कुल में जन्मी हूँ। संध्या को तो बस इतना ही याद रह गया है और इतनी सी ही प्रतीति है कि यह तो जन्मों–जन्मों से आपकी ही थी, आपकी ही है और अब आपके साथ दैविक–साक्षात्कार पाने के लिये चल पड़ी है।

विरह अगिनि जरो गात

1. विरह अगिनि जरो गात।
अनदिन, पल, छिन, साँझ, सकारे, पल नींद नहिं रात।।

2. दीठि न दर्पन, जोति सिरानी,
हेरत–हेरत गई जु हिरानी, पाथर है के जरे जात।।

3. मोतिन माला कंठ कुम्हिलानी।
हृदय–अगिनि अरु नैनन पानी, दिशि विदिशहु बहे जात।।

4. मैं जु खरी निज सजन दुआरे,
बोल पपीहरा साँझ–सकारे, मन–पंछी अकुलात।।

5. काहे को मनवा इत–उत डोले,
सुन न मधुर रव कान परे रे, बावरी 'संध्या' आई जात।।

व्याख्या

1. मेरी तो अब ऐसी दशा लगती है कि मालिक को पाने की तड़प–वियोग–व्यथा से मानों मेरे अंतर का चैन जल गया है। हर दिन, हर पल, हर क्षण एवं सबेरे, शाम एवं रात को एक पल की नींद कभी आती ही नहीं–क्योंकि अंतर–मन का कण–कण मालिक को पाने की प्रतीक्षा में मानों पलकें बिछाये जागरूक बैठा है।

2. ऐसा लगता है कि मेरी दृष्टि में जो दर्पण है जिससे मुझे दिखाई पड़ता था उस दर्पण की ज्योति (संसार को देखनेवाली) ही कहीं विलीन हो गई है। मुझे अब यही पता चलता है कि कदाचित् मालिक की खोज में ही लयलीन हुई मेरी दृष्टि ही खो गई है, अथवा यूँ कहूँ कि मालिक में ही विलीन हो गई है– इसीलिये मेरे यह दोनों नेत्र–द्वय, दृष्टि के मालिक के विलीन हो जाने के कारण पत्थर के सदृश रह गये हैं।

3. इतना ही नहीं बाबूजी! ऐसा भी हुआ है कि मानों मेरे अश्रुरूपी मोतियों को मेरे कंठ ने ही खुद में समेट लिया है जिसके कारण अर्थात् रो भी न पाने के कारण नैनों के पानी (अश्रु–धारा की बाढ़) में चारों दिशाओं का अर्थात् दीन, दुनियाँ का सारा ध्यान बह गया है।

4. मेरे बाबूजी मैं तो इसलिये बच निकली हूँ कि मुझे तो अपने बाबूजी के द्वार तक पहुँच पाने की आशा एवं एक–मात्र धुन लगी हुई है। संसार का पक्षी पपीहा तो वर्ष में एक बार स्वाँती–नक्षत्र में ही अपने प्रिय को 'पीकहाँ, पी कहाँ' करके पुकारता है किन्तु मेरे मन का पपिहा तो मानों 'पी कहाँ' की धुन को ही पी गया है। ऐ पपीहे! तू प्रातः और सायं 'पी कहाँ, पी कहाँ' बोल क्योंकि मेरा मन प्रिय से मिलने के लिए व्याकुल है संभव है तेरी बोली को सुनकर इसे कुछ चैन आ जाये।

5. आज तो मेरी दशा इस समय यह कह रही है कि ओ मेरे मन! तू प्रिय को पुकारता इधर–उधर क्यों डोल रहा है? सुन तो सही, मुझे लगता है कि मेरे मालिक का मधुर–रव मुझे पुकार रहा है। संध्या कहती है कि 'रे मन अब संध्या–बेला अथवा संधि–बेला, अथवा योग की बेला (घरी) आई ही जाती है।

दई अब जाऊँ कौन गली

1. दई अब जाऊँ कौन गली।
   तन–गली हेरी, मन–गली हेरी, तबहुँ न आवत नेरी।।

2. सूक्ष्म देखी, कारन देखी, आतम भूली जाय।
   षट् चक्रन सों पेखि न आवत, हेरी सुषुम नली।।

3. अलि इन नैनन दोष कहाँ है, कलि (प्रकृति) भ्रमि भूले आप।
   जाने कहँ पुरूषोत्तम पूरन ब्रह्म की रीति भली।।

4. हेरि कुण्डली, तऊ न पायो, देस–देस में जाय।
   'सन्ध्या' सद्गुरु हाथ बिकानी, लोग कहें पगली।।

व्याख्या

1. मेरे बाबूजी मेरी तो कुछ ऐसी दशा हो गई है कि मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कहाँ तुम्हें खोजूँ। अपने भीतर आपको खोजा, फिर मेरी विह्वल खोज ने मन का कण–कण खोज लिया परन्तु कभी दूरी का और कभी सामीप्यता के आनन्द का अनुभव प्राप्त करते हुये मैने पाया कि मैं तन को भी भूल गई और मन भी मुझे विस्मृत हो गया है परन्तु फिर आपने दूरी के आभास की रेखा मेरे समक्ष में रख दी है। आप मेरे पास ही क्यों नहीं रहते हैं।

2. इतना ही नहीं, आपकी सामीप्यता के पावन–सेक ने मेरे एहसास में मात्र आपके कोई अपनत्व प्रतीत न हो इसलिये मेरे तन के होश को भी भुला डाला है फिर मन से भी मेरे लगाव का बंधन पिघला कर इसके अपनत्व से भी मुझे स्वतंत्र कर दिया। मेरे श्री बाबूजी, सूक्ष्म एवं कारण शरीर में भी कभी आपके होने का एहसास पाया, कभी फिर भूल की अवस्था ने मुझे भुला दिया और फिर तो आपके ध्यान ने कमाल ही कर दिया कि मुझमें आत्मा के होने के एहसास से भी मुझे स्वतन्त्र कर दिया क्योंकि मैने पाया कि अपने में आत्म–बोध का होश भी मुझे भूल गया है। मैं क्या लिखूँ मेरे मालिक! साक्षात्कार की खोज में आपने

जैसा स्वयं ही मुझे लिखा था कि छः चक्रों को भी बेतहाशा दौड़ती हुई पार कर गई लेकिन साक्षात्कार नहीं पाया–सुषुम्ना–नाड़ी की खोज ने भी मानों मुझे जवाब देदिया है। मुझ बावरी को तो आपका साक्षात्कार ही चाहिये।

3. हे सखी (दशा) मेरे नैनों का क्या दोष है। अब तक तो सहज–मार्ग की साधना न पाने तक यह भौंरे की तरह से सांसारिक–गतियों (वाह्य को देखने) में ही ईश्वर को भूले रहे हैं। भला यह क्या जानते कि भगवान कहाँ है, कौन है। इतना ही नहीं पूर्ण–ब्रह्म की गति क्या है एवं कितनी परमानन्दमई है भला इन्हें क्या मालूम था। क्या मालूम था कि पूर्ण–ब्रह्म को प्राप्त कर पाने की रीति (तरीका) क्या है, आपके बिना संसार के प्राणी की तरह से ही मेरी रहनी भी थी।

4. 'संध्या' कहती है कि मेरे बाबूजी आपने जब मेरी कुण्डलिनी–शक्ति को जागृत–अवस्था प्रदान की तब भी मुझे दैविक–साक्षात्कार न मिल सका। सहज–मार्ग साधना के तरीके से ध्यान में डूबी हुई मुझे आपने देश, देश अर्थात् पिण्ड–देश ब्रह्माण्ड–एवं पार–ब्रह्माण्ड (देश) की सैर कराई फिर भी सैर कराने वाले का साक्षात्कार मुझे नहीं मिला। सद्गुरू की भाँति पालने वाले आपके चरणों में मैंने अपने को समर्पित कर दिया है– मानों अपने को आपके हाथों बेच ही दिया है। उस संध्या के लिये लोग कहते हैं कि यह बावली हो गई है।

मोहे आज श्याम रंग डूबन दे

1. मोहे आज श्याम रंग डूबन दे।
होरी आई रे न आई, मेरो बिरलो कन्हाई।।

2. कौन रंग में मोहे भिजोंवो, मैं अलबेली नार।
ऐसे रंग मोहे भिंजवो नागर, साईं को रंग निखार।।

3. तू अलबेली नारि नवेली, साईं को रंग है सँवार।
कोरे से रंग में रंगी चूनरी, तू नित सूखी सार।।

4. ऐसी होरी कबहूँ न खेरी, घर मसान भई छार।
दिशि–विदिशहुँ में धूर उड़ानी, उड़ि रज भई गुलाल।।

5. जित ही बैठत तित हीं देखत, गगन पवन है धमार।
'सन्ध्या' भई श्मशान की संध्या, तारे गिनत सिरताज।।

व्याख्या

1. आज तो मेरी दशा मुझसे कह रही है कि मुझे तुमसे बोलने का समय नहीं है मैं तो आज अपने प्रिय के रंग (श्याम–रंग), में डूबने जा रही हूँ– आज मुझे आवाज़ न दे। सच ही तो आज जब मेरे श्री बाबूजी महाराज वर्षों पहिले की मुझमें उतारी हुई आध्यात्मिक–दशाओं की अनुभूति को लिखाने के लिये मेरे समक्ष में आप ही उतार रहे हैं तो मैं यही पा रही हूं कि वह दृश्य भी आज मेरे समक्ष में है कि "जब पूज्य मास्टर ईश्वर सहाय जी ने मुझे पूजा देने के बाद बताया कि आज तुम्हारी दशा में मैंने कुछ कालिमा सी देखी है" तो मैंने घबरा कर अपने बाबूजी को पत्र लिखा कि 'बाबूजी मेरी दशा में कालिमा कैसे आ गई–मेरी दशा तो सदैव उज्जवल से उज्जवल और विशुद्ध से भी विशुद्ध होती जाती है लेकिन मास्टरसा–ने कहा है तो ठीक ही है। तो श्री बाबूजी का जो उत्तर था उसने तो मेरे और आदरणीय मास्टर साहब दोनों के ही होश उड़ा दिये थे। उन्होंने मुझे लिखा कि बिटिया 'मास्टरसाहब के एहसास से मैं

बहुत खुश हूँ यद्यपि असलियत के रंग की तमीज़ उन्हें नहीं थी" असलियत का रंग तम तो है किन्तु वह कालिमा नहीं बल्कि पावन को भी पावन बना देने वाला श्याम–रंग है– जो तुम्हें मुबारक हो"। वास्तव में मुझे होली के रंग का तो ज्ञान नहीं है क्योंकि मैंने कभी खेली नहीं–कदाचित् इसीलिये युग प्रवर्तक दिव्य–विभूति श्री बाबूजी ने मुझे दैविक–होली के पर्व का शुभ–दिन (असलियत की दशा को) भी दिखाया और असलियत के रंग की तमीज भी दी जो स्वयं बेरंग है।

2. हे बाबूजी! मुझे तो यह भी मालूम नहीं था कि दैविक–होली का पर्व और दैविक–असलियत का रंग कैसा है आपने ही मुझे दैविक–श्याम–रंग में डूबने की परम–गति प्रदान की है। सच तो यह है कि आपने अपनी बिटिया को असलियत के रंग में रंगकर अलबेला बना दिया है। मेरे साँई ने तो अपने ही रंग से मुझे सँवार दिया है।

3. हे बाबूजी! मेरी दशा तो अनोखी–अलौकिक गति में डूबी हुई है जिससे आपने ही मुझे सँवारा है। अब तो मेरी अंतर रूपी चूनर संसार के लिये कोरी की कोरी ही रह गई है क्योंकि सुख–दुःख, छोटा–बड़ा, मान–अपमान किसी का भी रंग अंतर–मन तक पहुँचता ही नहीं है इसलिये मैं तो सदैव अपने को इससे सूखा ही पाती हूँ।

4. मेरे बाबूजी! ऐसी होली खेलने का सौभाग्य तो कदाचित् किसी ने न पाया होगा जिसमें ऐसा रंग डाला गया हो जो बेरंग बना दे। आज आपने मुझे ऐसा ही सौभाग्य प्रदान किया है। मेरे लिये तो अब चाहे घर हो चाहे श्मशान हो सब समान ही लगते हैं मेरी दशा तो ऐसी है कि जो संसारिक–रंग की (संस्कारों) धूल उड़ती है वह मेरे तक पहुँचने से पहले प्रियतम के बख़्शे हुये असलियत के रंग में डूब जाती है।

5. 'संध्या' कहती है कि ओ मेरे बाबूजी! आपकी यह बिटिया तो अब जिधर भी बैठ जाती है और जिस तरफ भी देखती है यही

दशा अनुभव करती है कि मानों आनन्द में डूबी दशा इस होली (अहं की) के मौसम में परमानन्द रूपी धमार ही की गुनगुनाहट चारों दिशाओं से (धरती से लेकर आसमान तक से) सुन रही है। इतना ही नहीं हवा की गुंजन तक में मुझे परमानन्द की ही धुन सुन पड़ती है। आपकी संध्या तो अहं की होली जल जाने पर अब ऐसी दशा अनुभव कर रही है मानों श्मशान का सा सन्नाटा छा गया है–किन्तु इसमें भय या गम का पता नहीं है जो श्मशान में रहता है।

जीवन में हमारे आई बहार

1. जीवन में हमारे आई बहार राम आये श्री राम द्वार आये।
मन में भी उमंगे लाई अपार राम आये बाबू जी द्वार आये।

2. तेरे चरणों में 'राम' मेरे प्रेम की डोरी,
तेरे हाथों हैं आज मेरे नेह की डोरी,
चाहे डुबा दो आज या बचा लो। श्री राम द्वार आये।

3. मन ने छोड़ दी है रीति, संग में तोड़ दी है भीत
तेरे राग में जीत, तेरी हार में है प्रीति
यह दिन आये, हजार बार आये श्री राम द्वार आये।

4. युग ने आँख जो खोली, तो खेली प्रेम की होली,
दिशि में उड़त गुलाल, ईश्वर–धार की रोली,
'सन्ध्या' चरणों में बार–बार जाये। श्री राम द्वार आये।
बाबूजी द्वार आये।

व्याख्या

1. हे बाबूजी महाराज! मेरे जीवन में तो परमानन्द की बहार आ गई है क्योंकि मेरे राम (आप) मुझे मिल गये हैं – आपके ही बताये हुये सहज–मार्ग में ध्यान में डूबे रहकर ही मैंने आज यह परमानन्द की दशा पाई है। इतना ही नहीं मेरे मन में अपरिमित आनन्दमई उमंग भर गई है कि मानों आपको पाकर मुझे मेरे राम साक्षात् ही मिल गये हैं क्योंकि आपके मिलने से पहले मैं भगवान राम का ही ध्यान करती थी। आपको समक्ष में पाकर अब ध्यान में डूबी हुई परमानंद में डूबी हुई मुझे लगता है कि जो राम ध्यान में था वह राम साक्षात् ही मेरे साथ में है।

2. हे मेरे बाबूजी! मेरे प्रेम की डोर (लगन) तो अब आपके ही चरणों से बँध (योग पा) गई है। इतना ही नहीं बाबूजी, मेरे हृदय के प्यार की डोर आपके ही हाथों में है आप मुझे चाहे जिधर घुमाएं और चाहे जैसे मुझे रक्खें। अब यह आपकी इच्छा है कि चाहे

आप सिन्धु में मुझे डुबा दें या उबार कर अपने चरणों की शरण में मुझे लिये रहें।

3. मेरे बाबूजी, मेरी तो अब ऐसी समर्पित–दशा हो गई है कि लगता है मेरा मन आपके द्वारा सिखाई (उतारी) हुई प्रेम की रात को भी भूल गया है। कुछ ऐसी दशा है कि भय नाम की चीज मुझमें रह ही नहीं गई है। न जाने मुझे क्या हो गया है कि जब आपके प्रति मेरे मन में प्रेम का एहसास होता है तो अंतर ऐसा सशक्त हो उठता है कि मानों मेरी जीत हो गई है किन्तु एक उल्टी रीति यह भी तो है कि जब मुझे ऐसी हालत का एहसास होता है कि मानों अपनी इस बिटिया को आप याद कर रहे हैं तब मुझे फिर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों मेरे हृदय में सच ही आपके प्रति प्रेम जाग उठा है। मेरे 'बाबूजी' मुझ सी अदना अभ्यासी के लिये यह इतने महत्व की बात है कि यह दशा मुझमें बार–बार आये कि मैं एहसास करूँ कि 'ताकें पीछे हरि फिरैं कहैं कबीर–कबीर" – मैं तो आपसे यही माँगती हूँ कि यह दिन मेरे लिये हजार बार आये जो आपके इस प्यार के एहसास को बार–बार आपकी याद में डुबाये।

4. संध्या कहती है कि मात्र मैं ही नहीं बल्कि इस युग (समय) ने जब आपके कदमों में आँख खोली, अथवा यह कहूँ कि जिस शुभ–घड़ी में मेरे श्रीबाबूजी आपका अवतरण इस धरा पर हुआ तभी से मानों युग में मानव के प्रति दैविक–प्रेम की होली का रंग छा गया है। मैं देख रही हूँ कि आपके दैविक–ट्रान्समिशन (प्राणाहुति) का प्रवाह रूपी रंग चारों दिशाओं में फैलता जा रहा है। इतना ही नहीं मानव–मात्र के हित आपका प्रेम रूपी गुलाल समस्त में छा गया है जो मानव–जीवन में आध्यात्मिक–विकास को भर देगा और मानव–जीवन धन्य हो जायेगा। आपकी संध्या तो युग के इस दैविक–अभ्युत्थान का उज्ज्वल भविष्य समक्ष में पाकर आपके ऊपर वारी जा रही है, न्यौछावर हुई जा रही है।

लाई री लाई मेरे मन के जु मीत

1. लाई री लाई मेरे मन के जु मीत, तुम्हें खोज ही लाई।

2. कितेक दिनन ते बाट जोहती,
नित अँसुअन की माल पोहती,
बीती सो बीती यह दृग पंक्षिन, तुम्हें ढूँढ ही लाई।।

3. ना भेजूँ आली लिख लिख पतियाँ
लोग कहें ये बावरी बतियाँ
जाई सो जाई अब मन की जु भाई, तुम्हें बाँध ही लाई।।

4. धीरज न आवत इत–उत डोलत,
धरनि आकाश कोऊ नहिं बोलत,
कहु रे जुन्हाई तुम देखे कन्हाई, मेरे हिय में बसाये, तुम्हें खोज ही लाई।।

5. मैं न कहूँ लगी प्रानन बाजी,
लोनी लगन लई न जाई
जनम–जनम से बिछुरे प्रभुजी, 'सन्ध्या' रूठे 'राम' को बेसहि लाई।।

व्याख्या

1. हे बाबूजी! हे मेरे मन के मीत (प्रिय) मेरी हार्दिक–प्यार भरी खोज आखिर को आपको खोज ही लाई है।

2. मुझे लगता है कि मानों कितने समय से मैं आपके मिलने की ही बाट जोह रही थी। मेरा मन अश्रुओं की धार की माला बनकर आपके चरणों में चढ़ने की प्रतीक्षा में ही रत रहा है। लेकिन जो कुछ मेरे ऊपर बीता या मैंने सहन किया वह समय तो अब बीत ही गया है – मेरे दो नैनों के पक्षी आखिर आपको खोज ही लाये हैं।

3. यह अवश्य हुआ कि मेरा मन आपको खोजता तो जरूर रहा लेकिन मैंने अपनी व्यथा को लिख कर कोई पाती (पत्र) लिखकर नहीं भेजी–कदाचित् मेरी विरह–व्यथा को पढ़कर लोग यह कहते

कि यह पाती नहीं है इसमें तो एक बावली (दिवानी) की बातें लिखी हुई हैं। लेकिन जो बीत गया सो बीत गया अब तो मेरे मन को आनन्द प्रदान करने के लिये मेरे मन की आपको खोज पाने की व्यथा कदाचित् आंतरिक–लगन की डोर में बँधकर आपको धरा पर उतार ही लाई है।

4. हे बाबूजी, मेरे मन में अब बिना आपका साक्षात्कार पाये धैर्य नहीं आ रहा है। अपने ही अंतर में ध्यान में भी मैं बराबर इधर–उधर आपको ही खोजती रहती हूँ। धरणी–आकाश कोई भी तो आपका पता नहीं बताता है। सबेरे से शाम तक आपको ढूँढ़ते–ढूँढ़ते आख़िर रात की चाँदनी से भी आपका पता पूंछती हूँ किन्तु यह क्या? आप तो मेरे हृदय में ही बसे हुये थे–इसीलिये मेरी खोज भरी आँखें अन्ततः आपको खोज कर ले ही आई हैं।

5. मेरे बाबूजी! सच तो यह है कि मेरे प्राणों की बाजी स्वतः लग गई है यद्यपि मैं इसे कह नहीं पाती हूँ। मेरी लगन ही मेरे लिये लोनी (जो खून को चूसती रहती है) बन गई है। मेरे मन को हर लेने वाला आपका दैविक–सौंदर्य जो मेरे मन में समाया हुआ है, इस लगन रूपी लोनी से पुनः वापस नहीं लाया जा सकता है। सत्य तो यही है कि लगता है मेरा राम जो मानों जन्म–जन्मान्तरों से मुझसे रूठ (बिछुड़) गया था, आज आपकी संध्या उसे ही मना कर धरणी पर वापस माँग लाई है। अथवा दशा तो यह भी कह सकती है कि इसने अपने राम (बाबूजी) को खरीद ही लिया है।

आली बहुत कही है अब लौं

1. आली बहुत कही है अब लौं।
अब कहि कहा तोहे समुझावौं, धीर धरावौं कब लौं।।

2. देखी दुनिया रंग–बिरंगी, रीति निराली बेदुनिया की।
देखी, सुनी सबहिं कहि डारी, कही गई ही जब लौं।।

3. धरनी चादर ओढ़ नहिं जानौं, उघरत अँखियन पेखी।
पृथी, अकाश दोऊ जग जीवत, छोड भगी मैं उन लौं।।

4. चलत विमान कोऊ जनि पहुँचे, पूरन प्रियतम स्वामी।
भभरि–भभरि भगि, थहरू–थहरू थकि, बूझत फिरिहौं सबलौं।।

5. बावरि मुकुट शीश पहिनायो, नाम मुकुट मिल्यो माटी।
बैठी पुलकत थिर भई 'संध्या', बहुत सही ही अब लौं।।

व्याख्या

1. संध्या कहती है कि मेरे बाबूजी मैं तो नित बदलती हुई आपनी बहुत सी दशायें आपसे बताती रही हूँ लेकिन जो दशा अब है मेरी, उसे व्यक्त कर पाने के लिये मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं। अब दशाओं को व्यक्त करते रहने पर भी आपकी बिटिया कब तक मन को दिलासा देती रहेगी कि मैं अपने प्रिय का साक्षात्कार अवश्य पाऊँगी।

2. हे मेरे मालिक! आपकी दुनियाँ (ध्यान) में पैठ कर तरह–तरह की कितनी ही दशायें कभी आनन्द में भरी हुई कभी बेरंगी दुनियाँ (आनन्द–रहित दशायें) के बारे में जैसे भी लिख सकती थी अब तक वे सब आपको लिखकर बताती रही। जब तक कह सकती थी, व्यक्त कर सकती थी मैंने दशाओं को आपके समक्ष में पत्र द्वारा लिखकर व्यक्त किया है।

3. धरती माया की चादर से ढँकी हुई है यह तो मैं नही जान सकी किन्तु जब आपने या मेरे नैनों के समक्ष से वह आवरण हटा दिया

तभी मुझे पता लग सका था कि धरती वास्तव में माया की ओढ़नी से ढँकी हुई थी। यद्यपि पृथ्वी और आकाश दोनों को ही मैंने देखा कि मैंने जीते जी ही छोड़ दिया था अर्थात् मेरी आत्मिक–दशा दोनों के ही वातावरण से परे हो गई थी। क्योंकि मेरी तो एक ही धुन थी आपके चरणों में पहुँच पाने की – सो आपने मुझे उस पार पहुँचा दिया और बस मैं अब देख रही हूँ कि मैं आपकी ही ओर भाग पड़ी थी।

4. ओ मालिक! मैं तो यही पारही हूँ चाहे हवाई जहाज से चढ़कर भी कोई चले तो भी आपके देश नहीं पहुँच सकता है क्योंकि वहाँ हवाई–परी की गुज़र नहीं है बल्कि प्रेमरूपी पट्टी (लगन के) द्वारा ही आपके देश (सालोक्य की स्थिति) में कोई प्रवेश पा सकता है। मैं तो भहरा कर दीवानी की तरह से ही कभी तेज–गति से और कभी पूर्ण यात्रा के कारण आपकी मर्जी से ही धीमी–गति से मानों हर दशा से आपका ही पता पूँछती हुई मैं आपके पास तक पहुँची थी।

5. संध्या कहती है कि आपने तो मेरे नाम और रूप का मुकुट मिटाकर प्रेम दिवानी नाम का मुकुट मुझे पहिना दिया है – मेरा जन्म आपने धन्य कर दिया है। अब यह हालत है कि बार–बार मेरा अंतर मानों साक्षात्कार की निकटता का आभास पाकर पुलक उठता है। आपने जैसा मुझे लिखा था कि 'गीता में लिखित स्थिति–प्रज्ञ की दशा के आनन्द को भी हमारे लालाजी ने तुम पर तारी (तार) कर दिया है। इसलिये मुझे तो लग रहा है कि मैं तो स्थिर होकर मानों एकटक साक्षात्कार पाने की प्रतीक्षा में दशा को भी भुला बैठी हूँ। मैं तो फिर यही कहती हूँ कि बहुत तड़पने के बाद ही मेरे बाबूजी यह घड़ी मेरे लिये लाये हैं।

अलि बहुत कही ही, अब नहिं कहिहौं

1. अलि बहुत कही ही अब नहिं कहिहौं।
रहिहौं चुप करि, चुप करि सहिहौं, नहिं मारुत लौं बहिहौं।।

2. लाइहौं चित्त नहिं चोर चितेरो, बहुरि न बहि बकि अइहौं,
खावौं न पहिरौं नाहिन भूखी, एक अचम्भो दिखइहौं।।

3. एहि पन थाक्यो, वह पन थाक्यो, सब पन सरि–सरि जइयो।
लई खोजि जब भक्ति मधुरिमा, गरिमा हँसि–हँसि हरिहौं।।

4. अब तोहे कहा कहौं सौं मेरी, है नहिं है नहिं जानौ।
नाच उठी एक 'संध्या' जोगिन, ध्यान न काहुहि धरिहौं।।

व्याख्या

1. हे पाठकों! मैं तो बहुत दशाओं के बारे में लिख चुकी हूँ अभी तो यही लग रहा है कि अब मैं अपनी दशा के बारे में कुछ लिख पाने में असमर्थ हूँ। अभी तो यह दशा ही है कि बस मैं मौन रहूँ और मेरी प्रगति के लिये भी मेरे मन में सदैव आगे भाग कर चलने की या यों कहूँ कि हवा की तरह से बहकर अपने बाबूजी के पास पहुँचने की तड़प भी नहीं है।

2. मैंने यह भी सोच लिया है कि जो चोर की भाँति मेरे मन को चुराकर ले गया है उनका ध्यान मैं अपने मन में ही नहीं आने दूंगी। अब उनके (बाबूजी के) स्नेह के आकर्षण के बहकावे में मुझे नहीं आना है। मेरी तो यह दशा हो गई है कि मुझे लगता है कि मैं न कुछ खाती हूँ और न पीती हूँ फिर भी न कहीं भूख का पता है और न पानी की प्यास है। इतना ही नहीं अंग में कपड़ों का स्पर्श भी मैं नहीं पाती हूँ बस एक अचम्भे भरी दशा में ही में समाई बैठी हूँ।

3. सच तो यह है कि मेरे दोनों ही पन थक गये हैं अर्थात् बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक आपको खोजते–खोजते थक गई हूँ। इतना ही नहीं जन्मजन्मान्तरों से लेकर न जाने कितने पन

मर–खप गये हैं आपकी खोज में। अब इस जन्म में आपके सहज–मार्ग में ध्यान में रत रहकर जब मुझे भक्ति रूपी सौंदर्य ने निखार लिया है तब आपको पाकर जन्मजन्मान्तरों की गरिमा (गौरव) अथवा याद ही मानों मैं भूल गई हूँ और परमानन्द में डूबा मेरा अंतर मानों स्वतः आनन्दित हो उठा है।

4. संध्या कहती है कि हे मेरे बाबूजी! अपनी सौगन्ध खाकर मैं आपके समक्ष यह सत्य रख रही हूँ कि जबसे आपका दर्शन मिला है मैं यही भूल गई हूँ कि ईश्वर है या नहीं है मानों परमानन्द में डूबे मेरे मन का होश ही खो गया है। संध्या तो पुनः पुनः आपसे यही दशा अब कह रही है कि आपकी संध्या तो उसी साँझ से नाच उठी थी और आपके दर्शन का योग पाकर जोगिन हो गई थी जिस साँझ आदरणीय मास्टर ईश्वर सहायजी के साथ आप मेरे घर पर पधारे थे। अब तो आपके अतिरिक्त मेरे ध्यान में कुछ आता ही नहीं है।

जागि री सजनी भोर भयो री

1. जागि रे सजनी भोर भयो री।
ऐसी जु सोई मानो जगन न परिहै, पक्षिन शोर भयो री।।

2. उठि न निरख प्राची दिशि उय्यो, सूरज निर्मल किरनें,
अलसाई उनमुनि रहि बैठी, उयेऊ न है अथयो री।।

3. उगिहै सो तो अथयो परिहै, अथयो उगहन परिहै,
जहँ नहिं पीर है जनम–जनम की, तहँ मैं सोय रही री।।

4. काह करूँ एक भँवरा जोगी, उनमुनि कलि मँडरायो,
मेरो राम भजै मोहे ऐसो, जानि ठगी पौढ़ी री।।

5. जब जगि बैठी सोचत–सोचत, सपन मनो रहि आयो,
'सन्ध्या' जकी–बकी बिरुझानी, इत–उत दौर रही री।।

व्याख्या

1. संध्या कहती है कि मेरे अंतर में सोने वाली ईश्वर–प्राप्ति की तड़प अब आध्यात्मिकता का सबेरा हो गया है अतः तू जाग जा। ऐ तड़प! तू तो ऐसी सोगई है कि मानों अब तुझे जागना ही नहीं है। लेकिन अब सहज–मार्ग साधना में श्रीबाबूजी के द्वारा प्राणाहुति का प्रवाह पाकर ध्यान, एकाग्रता एवं भक्ति रूपी पक्षी अंतर में चहचहाने (जागने) लगे हैं।

2. ऐ प्रियतम की वियोगिन तड़प! देख अब ईश्वरीय–दिशा में श्री बाबूजी महाराज रूपी सूर्य उग आया है जिसकी निर्मल एवं शान्त–किरणें अभी अलसाई सी मौन सी कुछ इस तरह से है, मानों सूर्य की किरणों को अभी आफताब की तेज़ी नहीं मिल पाई है। कदाचित् इसीलिये अंतर को सूर्य के उग आने का ज्ञान पूर्णतयः नहीं मिल पाया है।

3. इसका एक दैविक–कारण यह भी हो सकता है कि जो उगा है, उसे अस्त भी होना पड़ेगा और जो अस्त हो गया है उसे पुनः

निकलना ही पड़ता है लेकिन यह आफ़ताब (ईश्वरीय–ज्ञान के सूर्य श्रीबाबूजी) तो अनन्त हैं, हमेशा था, हमेशा है और हमेशा रहेगा। मेरी ही हालत कुछ ऐसी हो गई है। तड़प का यह कहना है कि लगता है जन्म–मरण के बंधन से मुक्त होकर दर्द से परे की हालत में मानों सो गई हूँ या विलीन हो गई हूँ।

4. लेकिन इसका मैं क्या करूँ कि प्रेमरूपी भौंरे ने उड़कर अंतर में भक्ति रूपी कली को पुनः जागृत कर दिया है और इसी कारण मेरे अंतर की पीर जो इस आशा में सो सी गई थी कि जब मेरा राम (बाबूजी) मुझे स्वयं उठायेगा तभी मैं उठूँगी, परन्तु अब तो मैं उनकी खोज में स्वयं ही बावली हो गई हूँ।

5. संध्या कहती है कि जब आपने प्रेम रूपी भँवरे को भेज कर मुझे जगा ही दिया है तब 'उनके' मिलने का सोच फिर ऐसा उभर आया है कि वह शान्ति, वह आनन्दमई नींद का ख़्याल भी मेरे लिये अब स्वप्नवत् हो गया हैं। आपकी यह संध्या तो आपकी खोज में बावली सी दौड़ रही है (अर्थात् होश खोये सी सहज–मार्ग के पथ पर भागी चली जा रही है।

सुन री एक सपन मैं देखी

1. सुन री एक सपन मैं देखी।

2. कूकुर छिपकलि सोयं रहे री, हौं सुभाय गई फेरी,
छुवतहिं बबर, मगर होई हुँकहि, भलि अचरज़ मैं देखी।।

3. सागर भरो बीच मैं ठाढ़ी, सद्‌गुरु तीर लखे री,
प्रेम पगी सी उत कूँ बाढ़ी, मधु मुस्कान सरेखी।।

4. देखे वरद्–हस्त उठ पहुँचत, मैं झुकि चरन–परन लौं,
देखत उन जल–जात समानी, नहिंन सुधि अबरेखी।।

5. काह अकिंचन 'संध्या' याही समुझि सकुचि सरमानी,
रीति न रही प्रीति उन प्रभु की, गई गुमान अरु सेखी।।

व्याख्या

1. संध्या कहती है कि मेरे बाबूजी, मैंने तो एक अलबेला स्वप्न देखा है।

2. स्वप्न तो आज अर्थ लिखते समय भी मेरे समक्ष में सजीव हो उठा है मैंने देखा कि मानों कुत्ता, बिल्ली, छिपकली एवं नन्हें कीड़ों आदि के बीच मैं घूम रही थी। स्वभावतः ही मैं सारे जानवरों एवं कीड़ों आदि को छूने लगी तो मैं स्वयं एक अद्‌भुत–आश्चर्य में पड़ गई जबकि मैंने देखा कि जिस पर भी मैं हाथ रखती हूँ वही बब्बर–शेर की तरह से गरज उठता है। श्रीबाबूजी को यह स्वप्न लिखने पर उन्होंने मुझे लिखा था कि लालाजी की कृपा से तुम्हारे में वह शक्ति है जो तुम कुछ भी कर सकती हो। तुम्हारी इच्छा–शक्ति की फूँक से हिमालय भी अपना स्थान छोड़ सकता है। बस तुम अपनी बीमारी को हटाने का ख़्याल बाँध दोगी तो दूसरे ही क्षण वह समाप्त हो जायेगी। मेरे भाइयों मैंने उसका आश्चर्य और उस शक्ति के सदुपयोग का फल भी पालिया और मैं बड़भागिन हो गई थी। क्योंकि बाबूजी का पत्र पाते ही मुझे याद आया कि मेरे बाबूजी को दमे की तेज़ बीमारी है बस फिर

क्या था उनके ही चरणों में सिर नवाकर मैंने उनकी दमें की बीमारी को सदा के लिये समाप्त होने का विचार बाँध लिया। 'उनकी' कृपा तो देखिये कि फिर कभी उन्हें दमें का कष्ट हुआ भी नहीं। लेकिन आप स्वयं मैं अपने लिये या किसी के लिये भी वैसा करूँ तो वह सफ़लता जो उस समय की शक्ति के force चरम सीमा थी वह अब कैसे हो सकती है क्योंकि तब मेरे बाबूजी का एकबार कहना ही काफी था क्योंकि उनकी वाणी ही मेरी शक्ति है।

3. फिर स्वप्न देखा कि समुद्र हिलोरें ले रहा है और मैं सागर के बीच में स्थिर खड़ी हूँ कदाचित् इसीलिये कि मेरे समर्थ सद्गुरु ने अपने प्रेम (की शक्ति) रूपी कृपा के तीर से मानों मुझे ऐसा स्थिर खड़ा कर दिया था कि सागर की हिलोरें भी मुझे विचलित नहीं कर सकती थी। लेकिन जब समक्ष में दूरी पर मृदु–मुस्कान युक्त उनके पावन–मुखारविन्द का दर्शन पाया तो क्या सागर, क्या हिलोरें कुछ परवाह न थी और उनकी ही ओर प्रेम में बावली सी खुद को भूली हुई 'उनकी' ही ओर भाग चली थी।

4. ओ रे पाठको! जानते हैं फिर क्या हुआ? मैंने देखा कि उनके दोनों प्रिय वरद–हस्त–कमल मानों मुझे अंक में समेट लेने के लिये उठ गये थे और तभी मैं उनके पावन, दिव्य–चरणार्विन्दों में झुक गई थी। उनके चरण–द्वय का स्पर्श पाने के लिये। किन्तु मैं भला उनका स्पर्श कैसे पाती–क्योंकि देखते ही देखते मैंने पाया कि उन चरण–कमलों में मै समा गई और अपना कोई होश मुझे नहीं था।

5. बस मेरे बाबूजी आपकी संध्या तो यही सोचकर स्वयं में इस सकुच से शरमा कर सिमट गई है कि इस गरीब को आपकी दिव्य–विभूति ने कैसे अपने–चरणों में स्थान दिया। भाइयों, मालिक के चरणों में हमें स्थान मिल पाता है अनुभव की इसी परम–गति का वर्णन इस गीत में दिया हे। सच तो मैंने यही जाना है कि मेरे बाबू जी की गरीब–निवाज की प्रीति की रीति ही अभ्यासी की अपनी साधना के गुमान को समाप्त कर देती है।

तेरे द्वार पड़े युग बीत गये

1. तेरे द्वार पड़े युग बीत गये।

2. उठ ज़ाग पुजारिन आई है, अब द्वार खोल युग बीत गये,
दीनन–प्रतिपाल सदाई रहे, अब बरे करी क्यों रूठ गये।।

3. गज को जब ग्राह ग्रस्यो नंगे पायन ही धाय गये,
बिनती बृज–बनितन्ह आय कही, इतने नंद–नंदन आये गये।।

4. ओ गोबर्धन–गिरिधारी सुनो, वह राज कहो युग बीत गये,
'संध्या' तब चरनन आय पड़ी, प्रभु टेर सुनो युग बीत गये।।

व्याख्या

1. ओ बाबूजी! अब तो किसी भी हालत की सैर पूरी होने में देर हो जाती है तो लगता है आपके द्वार यानी चरणों में समाई हालत के आनन्द में डूबे हुये मानों युग बीत गये हैं।

2. ऐ मेरे मालिक! मेरी तरफ अपनी कृपा–दृष्टि को जगाये ही रखिये अर्थात् अपने में लय होने की मेरी गति को तेज ही किये रखिये क्योंकि आपके द्वार पर भक्ति में डूबी आपकी यह बालिका आपके चरणों में समाई हुई आपके द्वार पर खड़ी हुई है। अपनी कृपा का द्वार खोलने अर्थात् अपने में ही विलय कर लेने की प्रार्थना में बेसुध खड़ी है। अब तो लगता है कि जैसे युग बीत गया है–इसलिये अब अपना द्वार खोल ही दीजिये। ओ मेरे मालिक! आपने दीनों के अर्थात् अपनों को (जो मात्र आपकी शरण में हैं) सदैव ही अपनी कृपा एवं प्यार और शक्ति से पाला है तो अब देर न कीजिये मेरी ओर ही अपना मुख (रुख) कीजिये।

3. मैंने सुना है कि जब ग्राह (मगर) ने गज को पकड़ लिया था और लगातार उसे निगलने का प्रयास कर रहा था तब भगवान के रूप में उसकी पुकार सुनकर तो आप तुरन्त ही नंगे पैरों दौड़ पड़े थे। इतना ही नहीं जब बृज की बालिकाओं (गोपियों) ने

प्रार्थना की थी तो वैसे ही आप उनकी सहायता के लिये नंद–नंदन कृष्ण–भगवान के रूप में प्रगट हो गये थे।

4. 'संध्या' कहती है कि ओ गोबर्धन–पर्वत को धारण (उठाने) करने वाले! मैं आपसे पूँछती हूँ कि 'वह पुकार कैसी थी, उस में क्या कशिश थी कृपया मुझे इस भेद को बतायें–जिसका गान करते हुये युग बीत गये हैं। संध्या तो यही प्रार्थना करती है मेरे बाबूजी कि यह तो आपके ही चरणों में (शरणागत् हुई) पड़ी है। मेरे प्रभु अब मेरी तड़प–भरी पुकार आप शीघ्र ही सुनें और अपने चरणों में विलय हो जाने की लय–अवस्था प्रदान करें क्योंकि मैं अब देरी को सहन नहीं कर सकती हूँ अर्थात् मुझे अपने होने के भाव का होश भी सहन नहीं होता है अतः कृपया मुझे लय–अवस्था प्रदान करें जिससे आध्यात्मिक–क्षेत्र में मेरी गति अविरल हो सके।

यह तन छार–छार उड़ि जावैं

1. यह तन छार–छार उड़ि जावै।
तऊ सखि वह रूप माधुरी, कैसेहुँ तजि नहिं आवै।

2. कण–कण मिल माटी–वायु संग, जँह–जँह उड़ि–उड़ि जावै।
तृण–तृण सों करि संगत प्रभु के, वही गीत पुनि गावै।।

3. जिन कण–कण को भाग बड़ों, सो बन बदरी जग छावै।
बूँदन बरस सहज संदेसा बाबू के पहुचावैं।।

4. राम रम्यों है कहत जगत में, नाहिंन हिय कछु भावै।
'संध्या' बैठी हृद–तारंन सों, एक ही राग बजावै।।

व्याख्या

1. वास्तविक बात तो यह है कि जब हमारा प्रेम दैविक–विभूति से योग पाकर खिल उठता है तो अंतर में कुछ ऐसी दृढ़ता उत्पन्न हो जाती है जो स्वयं ही गुनगुना उठती है कि, मेरे शरीर का कण–कण अलग होकर यदि बिखर जाये, तो भी हे मालिक, इनमें तेरे प्यार का सौंदर्य इस प्रकार से लय हुआ मिलेगा कि जिसे कण से पृथक नहीं किया जा सकता है।

2. इतना ही नहीं मेरे ये कण मिट्टी में मिलकर वायु, के संग उड़कर जहाँ–जहाँ जायेंगे तो वायु में मिले हुए तिनकों की संगति से जो ध्वनि उत्पन्न होगी उनसे भी यही संगीत निकलेगा, यही दृढ़ता पुकारेगी कि उस रूप–माधुरी को भुलाया नहीं जा सकता।

3. मेरी दशा कहती है कि ओ मेरे प्रिय! इतना ही नहीं वरन् इनमें भी जो बड़भागी कण बादलों में मिलकर बदली बनकर आकाश में छायेंगे वे जल की बूंदों के रूप में बरसकर अपने बाबूजी के सहज–मार्ग का संदेश ही समस्त में फैलायेंगे।

4. 'संध्या' कहती है कि अब तो मेरी यह दशा है कि यदि मेरे सामने कोई यह कहता है कि समस्त में राम ही रमा हुआ है अर्थात् 'राम घट–घटवासी है तो मुझे मानों यह सुनना अच्छा नहीं लगता है क्योंकि अब घट तो फूट चुका है अर्थात् शरीर रूपी घट का कण–कण तो बिखर गया है और मेरे ह्रदय रूपी तारों से एक ही रागिनी बजती है, 'मालिक' में लय लीनता का ही राग अलापती हैं। विराट का आविर्भाव पाकर घट (सीमित) का अस्तित्व रह भी कैसे सकता था अतः मुझे हर समय यह अनुभव होता है कि मानों मैं घटघटवासी हो गई हूँ।

जब हरि अधिक–अधिक नियरैहैं

1. जब हरि अधिक अधिक नियरैहैं।
जनम–जनम की दुखिया के दुःख देखत ही घटि जइहैं।।

2. जीवन–मरण अरू जाति–कुजाति, भेद सकल विलगैंहैं।
पूँजी बाँधि धरी अन्तर में, कण–कण में बिखरैहैं।।

3. जागत–सोवत शरण तिहारी, अन्तर में सरसैहैं।
अगम सुखन की घरी घनेरी, संध्या नूतन पइहै।।

व्याख्या

1. सहज मार्ग साधना प्रारम्भ करने पर ध्यान के ही रंग में जब धीरे–धीरे मेरा ध्यान रंगा रहने लगा तब मैनें पाया कि मानों मेरा अंतर दिनों दिन ईश्वरीय सामीप्यता के अनुभव के आनन्द से भरा रहने लगा है। इस अनुभव ने मेरा अपना संसार ही बदल दिया था। तब हर समय ऐसा लगता था कि जिनके विछोह के दुःख से मेरा अंतर भरा रहता था, मुझ दुखिया का वह दुःख धीरे–धीरे कम होता जा रहा है।

2. उपरोक्त पावन–दशा की प्राप्ति के फलस्वरूप मैंने पाया कि जीवन और मृत्यु, जाति–कुजाति, छोटा (गरीब) या बड़ा (अमीर) ये सारे भेद मेरे मन से दूर हो चुके थे। मुझे कुछ ऐसा लगता रहता था कि मानों जो संस्कार रूपी संपत्ति की गठरी मैंने अपने अंतर में जाने कब से बाँधकर रखी हुई थी वह खुलकर बिखर गयी। ईश्वरीय–सामीप्यता का पावन सेक पाकर मानों सारे विकार पिघल–पिघलकर बाहर निकल गये थे। यह सहज–मार्ग साधना का ही सुन्दर फल था कि निज साधना द्वारा जो कार्य जन्म–जन्मान्तरों में भी होना कठिन था कितनी शीघ्रता सेपूर्ण हो रहा था और कुल अंतर पावन होता जा रहा था।

3. फलस्वरूप सहज–मार्ग–साधना की यह भी विशेषता मैंने अनुभव

में पाई कि हृदय ज्यों–ज्यों संस्कारों से रहित होता जा रहा था अन्तर मानो सोते–जागते ईश्वरीय–शरण में डूबता जाता था। ऐसे ही अनुभव के आनन्द में मानों मेरा अन्तर डूबा रहने लगा था। इतना ही नहीं मुझे हर समय अपने अंतर में ऐसा ही लगता था कि मानों आगे और भी परमानन्द नई–नई दशाओं के रूप में मुझे मिलता जायेगा। मेरे बाबूजी आपकी 'संध्या' तो यही कह रही है कि अब तो नित्य नवीन–आनन्द का समय मेरे लिये आता ही जा रहा है।

चलो आश्रम चलें, चलो आश्रम चलें

(रचना काल--शाहजहाँपुर में अपने आश्रम के उद्‌घाटन के समय)

चलो आश्रम चलें, चलो आश्रम चलें।
खुदी को मिटाकर, खुदा से मिलें।।

1. आई आई बसन्त बहार है।
हम खुशी से बढ़ें, बढ़ चले बढ़ चलें।
योगाश्रम में छाई बहार है।।

2. लाये–लाये 'सहज–मार्ग' साधन भला।
बाबू जी की हैं लेते हज़ारों बला।
प्राणाहुति का यहाँ धारा प्रवाह है।।

3. जन्म 'लाला' का इनको मुबारक रहे।
ये मुबारक हैं, हमको मुबारक रहें।
जगमगाये खुशी का त्यौहार है।।

4. हम हैं सच्चे सिपाही अडिग हैं सदा।
हैंगे बालक तो क्या, गीत गायें सदा।
नव आश्रम का ये ही श्रृंगार हैं।।

5. कला एक–एक से पूरा हो जैसे ये चाँद।
फले फूले मिशन हो हमें इसका मान।
हम तो इनके ही ऊपर बलिहार हैं।।

6. 'संध्या' गीत युगों तक गाये यहीं।
बच्चे कह–कह के खुशियाँ मनायें यही।।
अपने आश्रम के चौकीदार हैं।
अपने आश्रम के पहरेदार हैं।।

व्याख्या

1. आज इस अपने शाहजहाँपुर–योगाश्रम की गौरव–गरिमा का महत्व लिख पाने के लिये मेरी लेखनी ने अपना सिर उठाया है–

इसकी लाज मेरे बाबूजी के वरद–हस्त कर कमलों में है। मैं आज ऐसा पा रही हूँ कि मानों चारों ओर से वातावरण में यही दैविक–निमंत्रण प्राणीमात्र के लिये आ रहा है कि चलो भाई अब अपने योगाश्रम चलें जिसका गौरव यह है कि मेरे 'मालिक' ने इसे दैविक–शक्ति से इतना (भर) दिया है कि आश्रम में प्रवेश करते ही ऐसा लग रहा है, ऐसी खुशी है कि मानो आज अहं को मैं द्वार पर ही छोड़कर पृथ्वी पर अवतरित हुए ईश्वर (Divine) से ही मिलने के लिये चली जा रही हूँ। आज पावन बसन्तोत्सव की बहार चारों दिशा में छाई हुई है।

1. अब तो हमें चाहिए कि अपने लक्ष्य–प्राप्ति की दिशा में अर्थात् जीव का ईश्वर में पुनः योग हो जाये इस दिशा में, परमानन्द में डूबे हुए सतत् बढ़ते ही चले जायें क्योंकि आज हमारे इस योगाश्रम में कुछ ऐसे ही वातावरण की बहार छाई हुई है।

2. इसका कारण यही है कि हमारे श्री बाबू जी महराज सहज–मार्ग में ईश्वर के ध्यान में रहने का जो सरल–एवं सहज तरीका लाये हैं, यह अपने में अद्वितीय है। इसका अनुभव हम सभी अभ्यासी पा रहे हैं इसलिये हम सभी आज अपने बाबूजी की हज़ारों बलइयाँ ले रहे हैं। इसका कारण बस यही है कि सहज–मार्ग साधना में हम अभ्यासियों को अपने बाबूजी द्वारा पावन–ईश्वरीय धारा का अपने हृदयों में सतत्–प्रवाह मिल रहा है।

3. ओ हमारे बाबूजी महराज, हम तो आज केवल इतना ही बोल पा रहे हैं कि आपको समर्थ श्री लालाजी साहब का यह पावन बसंतपंचमी का जन्मदिन सदैव ही मुबारक रहे और हमारे बाबूजी हम सब अभ्यासी भाई–बहिनों को सदैव मुबारक रहें। हमारा ये योगाश्रम परमानन्द में भरा, सदैव जगमगाता रहे यही हमारा सबसे बड़ा त्यौहार है।

4. ओ बाबू जी! आप हमे ऐसा ही वरदान दें कि हम अपने लक्ष्य को पाने के लिये योगाश्रम में सच्चे सिपाही के रूप में बने रहें और सदैव सच्चे सिपाही की भाँति ही अपने लक्ष्य–पूर्ति का प्रण पूर्ण करने में हम अडिग रहें। यद्यपि हम सभी साधना में नन्हें बालक

की भांति ही है फिर भी आपकी कृपा से हम सब जन यही गीत गाते रहेंगे कि हमारे इस नव–निर्मित योगाश्रम का श्रृंगार तथा शोभा तो हमारे बाबूजी ही हैं और सतत् रहेंगे।

5. ऐ मालिक! आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि जिस प्रकार प्रति–दिन कलां–कलां बढ़ता हुआ चंद्रमा पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र बन जाता है इसी प्रकार से हमारा यह मिशन दिन–दिन बढ़ता हुआ पूर्ण–चन्द्र की भाँति पूरे संसार में फैलकर इसे अपने दैविक–प्रकाश से परिपूरित कर (भर) दे। तभी हम गर्व से कह सकेंगे कि यह प्राणी मात्र के लिये ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य–पूर्ण कर देने में समर्थ है। हम तो आपके ऊपर ही बलिहार जाते हैं क्योंकि आज आपकी कृपा से ही यह हमें सुलभ हो सका है।

6. ओ मेरे बाबू जी, आपकी 'संध्या' का यह गीत सहज यही गुण–गान कर रहा है जो युगों तक पृथ्वी पर गाया जायेगा और आने वाला युग आपके ही गुणानवाद गाने में तन्मय हो जावेगा। इसमें प्रवेश पाने वाले आपके अभ्यासी बच्चे यही गा–गाकर खुशियाँ मनाया करेंगे कि हम अपने योगाश्रम के ही चौकीदार हैं और अपने इस योगाश्रम के पहरेदार भी है ताकि कोई बुराई इसमें कभी भी प्रवेश न कर सके। इसमें दिव्यता का पावन भोर सदैव शान्ति एवं शान्ति फैलाता रहे। दुनियां की अंधेरी रात कभी चोरों की भाँति इसके द्वार में भी प्रवेश न करने पावे।

हम तो इन पे निसार रहते हैं

1. हम तो इन पे निसार रहते हैं।
   ये भी इन्कार कब ये करते हैं।।

2. कभी खुद पे भरोसा कर बैठे।
   लेकिन एतबार कब ये करते हैं।।

3. इतना समझो 'समझ' समझ न सके।
   तभी किरण की धार भरते हैं।।

4. ज्ञान और भक्ति सब तमाशागीर।
   छोड़ा इनको तभी ये मिलते हैं।।

5. ध्यान इनका ही है गुणों से परे।
   लक्ष्य से तब ही हम चिमटते हैं।।

6. खुद को खोकर हों लय सदा इनमें।
   सत्य अन्तिम से हम निखरते हैं।।

7. 'संध्या' दौड़ेंगें दस कदम ये ज़रूर।
   तन्हा हम इन्तज़ार करते हैं।।

व्याख्या

1. यह मेरा गीत इस आत्मिक दशा की अभिव्यक्ति है कि मैं तो अब अपने बाबूजी महराज की ही हो गई हूँ। मुझे यह आश्चर्य भी अवश्य है कि इन्होंने भी इस सत्य को स्वीकार कर लिया है और पत्र में मुझे यही लिखा है कि कस्तूरी जो दुनिया की थी वह तो मर चुकी है और जो अब है वह मेरी है।

2. मैनें सदैव यही पाया है कि जब भी मैंने पत्र में उन्हें अपनी दशा लिखकर भेजी है कि मुझे ऐसा लग रहा है तब इन्होंने यही लिखा था कि अभी 'उर्द' में सफेदी भी नहीं आई है। जानते हैं कि ऐसा क्यों? क्योंकि मुझे कहीं अपने प्रेम पर भरोसा न हो जाये और मैं इनकी कृपा पर निर्भर रहने के स्थान पर अपने पर भरोसा करने लगूँ।

3. कदाचित इसलिये ही मेरे लेखन को बल नहीं देते थे, तो भाई इतना ही कहूँगीं कि दशा वही श्रेष्ठ एवं सहज है जिसमें हमें खुद अपने प्रेम का पता नहीं मिलता है। तभी एक समय ऐसी सहज अर्थात् स्वाभाविक–दशा जरूर आती है कि फिर हमें इनकी पावन प्राणाहुति शक्ति की धारा का अनवरत् प्रवाह अपने अंतर में भरता हुआ अनुभव हो पाता है।

4. एक महत्वपूर्ण रहस्य की सरलता मैंने सहज–मार्ग साधना में तन्मय रहते हुए यह भी पाई है कि श्रद्धा–भक्ति एवं ज्ञान यह सब हाल मानों ईश्वरीय मार्ग पर अग्रसर होते जाने में राह के राहगीरों की तरह ही हमारा साथ दे पाती है। लेकिन यह भी सत्य मेरे समक्ष में स्पष्ट हो गया है कि जब इन तीनों से हम ऊपर उठ जाते हैं तभी हमें अपने मालिक के देश (सालोक्य) का पता मिल पाता है जहाँ हमें यह अनुभूति प्राप्त हो जाती है कि मानों हम सदैव उनके साथ ही रह रहे हैं।

5. सहज–मार्ग साधना में जो हमारे बाबू जी ने ध्यान में डूबे रहने को बताया है कि ईश्वर सबके अन्दर विद्यमान है और हमारा हृदय उसके प्रकाश से ही प्रकाशित है, यह गुणों से परे है और ईश्वर भी गुणों से परे है इसलिये एक दिन यह सौभाग्यशाली दिन हमारे लिये अवश्य आता ही है कि हम अपना लक्ष्य अर्थात् ईश्वर को प्राप्त कर 'उनसे' चिपट जाते हैं।

6. अब जब हमें मानव–जीवन के श्रेष्ठ–लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है तब आगे हमारे बाबू जी महराज अपनी कृपा एवं शक्ति से हमें तैयार करने लगते हैं इससे भी आगे ले जाने के लिये। वे कैसी कृपा करते हैं कि पहले प्राप्त की हुई दशाओं को इतनी सहजता दे देते हैं कि अब यह लगने लगता है कि हम अपने 'मालिक' में ही लय हो चुके हैं। कल धीरे से वे हमे अंतिम–सत्य के सौंदर्य अर्थात् दिव्य–सौन्दर्य से भी सजाना प्रारम्भ कर देते हैं इसका पता ही हमें नहीं चलता है।

7. अपनी अनुभूति के द्वारा 'संध्या' आज डंके की चोट पर यह कह सकती है कि यदि हम इनका अर्थात् अपने बाबूजी महराज का साथ अंतर और बाह्य दोनों में पाकर भी इस अनुभूति में पड़े रहने लगते हैं अर्थात् हर क्षण हमें यह आभास मिलता है कि मानों हम तो अब मात्र इस दया की अनुभूति में डूब जाते हैं कि 'बिना भक्ति तारो तब तारिबो तुम्हारो है'।

धन–भाग्य तुम आये एक बार

1. सब दृष्टि उठाये बैठे थे, आशा ये लगाये बैठे थे,
   कैसे छवि निरखें एक बार।।

2. तुम आये दुनियाँ रोशन है, दुनियाँ वालों में जागृति है,
   ध्यानावस्थित हों एक बार।।

3. जो कुछ भी बाँधा था अब तक, चरणों में खोल धरें अब सब,
   हों हृदय शून्य फिर एक बार।।

4. मिल गया आज है मार्ग सहज, धारा ईश्वर की बरसे अब,
   हो जायें लय फिर एक बार।।

5. हर अदा आपकी खींचे है, मुस्कान से पुष्प खिले ये हैं,
   महका ये विश्व फिर एक बार।।

6. अणु–अणु में दिव्य–झलक तेरी, ईश्वर दर्शन में नहीं देरी,
   दृष्टी पड़ जाये एक बार।।

7. अनुपम संकल्प तुम्हारा है, दैविक – शक्ति से पूरा है,
   चेतन हो युग, फिर एक बार।।

8. उतरे बन लाला के चिराग़, संध्या अंधियारा मिटा आज,
   अपने घर पहुँचें एक बार।।

व्याख्या

'संध्या' कहती है कि हे बाबूजी! धरा पर आपका अवतरण होने से हमारे भाग्य धन्य हो गये हैं। आपका अवतरण हमारे लिये आदि–शक्ति की वर्षा की बहारों को उतार लाया है।

1. हे बाबूजी! इस बिगड़ते हुये युग को देखकर समस्त की दृष्टि डिवाइन की कृपा पाने के लिये उसी ओर लगी हुई थी। समस्त की एक ही आशा थी कि कब और कैसे उस दिव्य–छवि का दर्शन हम धरा पर पा सकेंगें, जोकि इस युग में परिवर्तन ला सके।

2. हे कृपालु! आपके अवतरण से यह संसार दिव्य–प्रकाश से प्रकाशित हो उठा है। आपके सहज–मार्ग की साधना को अपना कर प्राणियों में दैविक–जागरण जाग उठा है। हे बाबूजी! एक बार ऐसा समय पुनः आ गया है कि हमारे मन ध्यान में स्थिर हो सके हैं।

3. हे बाबूजी! अब समय आ गया है कि हमने संस्कार रूपी गठरी में अब तक जो कुछ सँजोया है उसे खोलकर आपके चरणों में बिखेर दें क्योंकि आपकी दैविक–प्राणाहुति–शक्ति की धारा में हमारे सारे बंधनों को काट पाने की क्षमता है। तभी हमारे हृदय एक बार फिर शून्य होकर आपके समक्ष फैल जायेंगे।

4. हे कृपालु! आपकी सहज–मार्ग–साधना के मिल जाने से अब यह पृथ्वी ईश्वरीय–धारा की वर्षा से भीग उठेगी। मानवं पुनः ईश्वर में लय–अवस्था प्राप्त कर पाने का सौभाग्य पायेगा।

5. हे प्राणाहुति शक्ति के मालिक! आप दैविक–प्यार के वह श्रोत हैं जो मानव को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। इतना ही नहीं आपकी दैविक–मुस्कान से मानव–हृदय रूपी पुष्प खिल उठे हैं। वास्तव में आज सारा विश्व दैविक–सुगन्ध से सुगन्धित हो गया है।

6. हे मेरे बाबूजी! मैं और कुछ तो नहीं जानती हूँ बस अणु अणु में आज आपके दर्शन की ही झलक पा रही हूँ। कदाचित् यही कारण है कि मुझे ऐसा लग रहा है कि अब मानव के लिये ईश्वर–दर्शन में देरी नहीं होगी। बस यह सत्य भी आज स्वतः प्रकाशित हो गया है कि इसके लिये आपकी प्यार भरी दृष्टि ही हमें चाहिये।

7. हे परम प्रिय! आपका यह दैविक–संकल्प अनूठा एवं अनुपमेय है कि मानव–मात्र को ईश्वर की प्राप्ति हो। ऐसा तो होकर ही रहेगा क्योंकि आपका दिव्य–संकल्प भूमा की पूर्ण–शक्ति का प्रतीक है। इसलिये हमारी आशा फलीभूत होने लगी है कि युग एक बार पुनः ईश्वर–प्राप्ति के संकल्प हित चेतन हो उठेगा।

8. हे बाबू जी ऐसा हो भी क्यों न? जबकि सहज–मार्ग साधना के अभ्यास ने यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे समर्थ लालाजी ने भूमा की शक्ति से समस्त को प्रकाशित करने वाले, दिव्य दीपक के रूप में आपको उतारा है। हे बाबूजी! आपकी संध्या ने तो यह सत्य उज्जवल हुआ पा लिया है कि आज युग के अंतर से अज्ञान का अंधियारा मिट गया है। समस्त में यह आशा व्याप्त हो गई है कि हम पुनः वतन (दिव्य–देश) को वापस लौट चलेंगे।

हमने वो बहारें देखी हैं

1. ये कब आये, कैसे आये, वो कौन मधुर–स्वर ले आये,
जग उठा विश्व का अंतर–मन, प्रेरित है सारा वातावरण,
तस्वीर वो हमने देखी है।।

2. निज उर में अभ्यासी को रख, अरू प्यार से अपने पालैं सब,
जब हम जागें अपने घर में, तब लिया गोद अपने हिय में,
इनकी अपनाइत देखी है।।

3. हम सोयें, माँ बाबू जी जगैं, हम भूलें वो वात्सल्य पगें,
साक्षात्कार हो हम सबको, हमरा सब बोझ उठा करके,
इनकी वो इनायत देखी है।।

4. गति ने विश्राम लिया जब है, बढ़ने की चाह जहाँ लय है,
रख हाथ दिया ममतामय है, हर ओर वहां जय है जय है,
करूणा वो, अलौकिक देखी है।।

5. संकल्प लिये बाबूजी हैं, अभ्यासी भूमा में लय हों,
प्राणाहुति–शक्ति मिली उनसे, अब दूर रहें घर से कैसे,
वो अद्भुत क्षमता देखी है।।

6. जब दृष्टि में दृष्टि ना थी, शक्ति सामर्थ्य ही व्यापक थी,
सृष्टि–कर्ता ने मार्ग दिया, शक्ति अपनी में मिला लिया,
मारग की सहजता देखी है।।

7. पूरन हैं ब्रह्म वो क्या कहिये, अंतिम है सत्य वो क्या कहिये,
'संध्या' मालिक है ये सबके, इनको, इनका सा ही कहिये,
वो गौरव–गरिमा देखी है।।

व्याख्या

संध्या कहती है कि हे बाबूजी! मैंने आपके दैहिक–दैविक–सौंदर्य के दर्शन के साथ ही आपके द्वारा बरसती दैविक–बहारों (ईश्वरीय–धारा) की निरंतर वर्षा को भी देखा है।

1. भाई, यह तो मैं नहीं जानती कि कब और कैसे इनका अवतरण पृथ्वी पर हुआ, कौन इन्हें उतार लाया है। हाँ समस्त के प्रति इनके इस मधुर निमंत्रण के स्वर को मैं सुन रही हूँ कि जिसको आत्मसात करके विश्व का सुषुप्त–अंतर–मन आध्यात्मिकता हेतु जागृत हो उठा है। समस्त वातावरण आज दैविकता से प्रेरित होकर सजग हो उठा है। सच ही है उनके ऐसे अलौकिक एवं दिव्य–स्वरूप का दर्शन मैंने पाया है।

2. भला क्या किसी को ऐसा दैविक–प्यार पाने का सौभाग्य कभी मिला है? कि अभ्यासी को अपने हृदय में धारण करके उसे अपने दैविक–प्रेम का पान कराकर पाल रहे हैं। इतना ही नहीं जब कभी हमारा ध्यान भटक कर अपने घर यानी संसार की ओर पुनः जागरूक होने लगता है तभी मैंने पाया कि वे तुरंत अपनी दैविक–गोद का आभास हमें देते हैं ताकि हम पुनः ध्यानावस्थित हो जायें। अभ्यासी के प्रति श्री बाबू जी के इस अपनेपन को मैंने देखा है।

3. उनके पावन–वात्सल्य का नमूना तो मैंने तब देखा है जबकि हम साधक तो रात में आराम से सोते हैं लेकिन वे हमारी उन्नति हेतु काम करते हुये जागते हैं जिससे कि अभ्यासियों को ईश्वरीय–साक्षात्कार प्राप्त हो सके। इतना ही नहीं इसमें बाधक सारी बातों का बोझ भी स्वयं ही साफ करते हुये हमारे हृदयों को उज्जवल बनाते हैं। अपने बाबूजी की ऐसी कृपा को मैंने हृदय में प्रत्यक्ष उतरा पाया है।

4. ओ बाबूजी! जब कभी मुझे लगा कि मेरी चाल थम गई है, और आगे बढ़ने की इच्छा भी लय हो गई है यानी थम गई है– तभी लगा कि मानों आपका वरद्–हस्त–कमल हमारे ऊपर आ गया है और फिर तो हर ओर मानों मुझे विजय ही विजय का एहसास होने लगा है। उनकी इस अलौकिक–दयालुता को मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

5. हे बाबूजी! आपका दैविक–महत् संकल्प तो हमें भूमा अर्थात् अल्टीमेट में लय करने का है। इसको पूर्ण करने के लिये हमें

आपके द्वारा हृदय में ईश्वरीय–धारा का प्रवाह सतत् रूप से मिल रहा है। तो फिर हम अपने घर (भूमा) से अब दूर कैसे रह सकते हैं। हमारे अनुभव ने श्री बाबूजी की ऐसी दिव्य, एवं अद्‌भुत–प्रतिभा की क्षमता की प्रतीति भी हमें प्रदान की है।

6. हे बाबूजी, आपके द्वारा प्रतिपादित–सहज–मार्ग सिस्टम की विशेषता का आभास तो मुझे तब मिला जब कि मेरी दशा ऐसी थी कि दृष्टि मानों शून्य हो गई थी। समक्ष में मात्र ईश्वरीय–शक्ति और उसकी सामर्थ्य ही व्याप्त लगती थी। तभी मैंने पाया कि मानों मेरे समक्ष आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हो गया है, मानों स्वयं Divine ने ही मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इतना ही नहीं आपके समक्ष में व्याप्त अपनी शक्ति एवं उसकी क्षमता में भी मुझे लय करके मानों मुझे उस पर स्वामित्व प्रदान किया है। सहज–मार्ग की ऐसी स्वाभाविक–देन को मैंने प्रत्यक्ष हुआ पाया है।

7. हे मेरे बाबूजी! इस दैविक–स्थिति को पाकर मैं क्या समझूँ कि आप पूर्ण–ब्रह्म हैं या यह कह सकती हूँ कि आप अन्तिम–सत्य (भूमा) के ही प्रतिनिधि हैं। बाबूजी! आपकी 'संध्या' ने तो यही जाना है कि मुख्य–केन्द्र की शक्ति के स्वामी आप हैं। यही कारण है कि आपकी उपमा के लिये मेरे समक्ष बस आप ही हैं। सच तो यही है है कि आपके द्वारा उतारी हुई दैविक–स्थिति को पाकर ही आपके दिव्य–गौरव की इस गहनता को मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ।

कौन थे वो कौन थे

1. कौन थे वो कौन थे, कैसे कहें वो कौन थे।
एक दिन जब सामने आये, तब ये समझे कौन थे।।

2. दर्द मानव का छुपाये, लाल 'लाला' का खड़ा यों,
मानों चिर–विजयी वो योद्धा, सृष्टि का गहना सजा ज्यों,
मन वियोगी हो उठा जब तब ये समझे कौन थे।।

3. हृदय में ममता का सागर और नज़रें शून्य थीं,
सादगी भी मिलन का मानों लिए संकेत थी,
मुस्कुराया भोलापन जब, तब ये समझे कौन थे।।

4. प्राण बन कर जब समाये, तब लगा हम जी उठे थे,
सिर झुका चरणों में था पर मन कहाँ और हम कहाँ थे,
फिर कभी लौटी न सुधि जब, तब ये समझे कौन थे।।

5. इस क़दर हम बिक चुके थे, भाव भी भूले थे अपना,
ले गया किस देश में, कैसा सुहावन था वो सपना,
'कुतुब' पै चढ़के पुकारा, तब ये समझे कौन थे।।

6. ड्योढ़ी में जब आन पहुँचे, दर्श में लय थे समूचे,
राह हमसे खो गई अरू, हद की हद भी हो गई थी,
सामने मुस्काया कोई, तब ये समझे कौन थे।।

7. नापी जा सकती है सागर की गहनता भी कभी,
पर न मापी जा सके उस प्यार की छलकन कभी,
शून्य बन कर जब खड़े थे, तब ये समझे कौन थे।।

8. सालिकों का चलता–फिरता, वो अनूठा रूप था,
ज़ज़्बा 'उनमें' ज़ज़्ब था, डग–डग में थिरके दिव्यता,
कोई रह पाये न 'उन' बिन, तब ये समझे कौन थे।।

9. जनक लाला जी थे उनके, आदि–शक्ति माता उनकी,
सृजनहारा कौन था बस, ये ही जाने मर्ज़ी उनकी,
बसन्त आया जब हमारा, तब ये समझे कौन थे।।

10. 'संध्या' युग को भूल जाये, वो भले ही सृजनहारा,
किन्तु कैसे भूलते 'ये' जग की आँखों के हैं तारा,
तेज़ में जब कुल समाया, तब ये समझे कौन थे।।

व्याख्या

इस गीत की रचना मैंने 'कौन थे वे' पुस्तक रचना के पश्चात ही की है। आज इसकी व्याख्या भी उनके अतिरिक्त और कौन लिखवा सकता है; अतः उनका सदैव समक्ष में रहना ही नितान्त आवश्यक है कि लोग अब मुझसे पूछते हैं कि आपके बाबूजी कैसे थे? आप हमें उनके पावन--दर्शन के बारे में बतायें। तो अब सुनियेः--

1. भाइयों! आप मुझसे मेरे बाबूजी के बारे में पूछ रहे हैं। लेकिन मेरे 'मालिक' परम श्रेष्ठ--गति से भी उठा कर अपने संकल्प में भर कर अपनी इस बिटिया को कहाँ ले गए हैं इसका पता पाना आज मेरे लिए असंभव इसलिए नहीं है कि खुद उनका संकल्प ही मेरा साथी है एवं लेखिनी का एकमात्र स्वामी है। सच तो यह है कि मैं तो उनके बारे में कुछ भी नहीं जानती लेकिन एक दिन जब वे स्वयं अपनी गहनता के सहित मेरे समक्ष प्रगट हो गए तभी जो कुछ मैंने उनके दिव्य--दर्शन में पाया है वह ज्यों का त्यों अपने प्रिय बन्धुओं के समक्ष उतार देना चाहती हूँ। फिर भी कैसे कहूँ कि वे कौन थे।

2. सर्वप्रथम जब मैंने श्री बाबू जी को देखा तो प्रथम दृष्टि पड़ते ही अन्तर में कुछ ऐसा लगा कि मानों मानव--मात्र की अंतर--व्यथा को छुपाये हुये यह दिव्य--पुरूष हमारे समक्ष कुछ इस तरह से खड़े हुये थे मानों इनके दिव्यागमन से मानव--आत्मा की प्यास अब अवश्य बुझ सकेगी एवं अन्तरव्यथा दूर हो जायेगी। उनके प्रथम दर्शन मात्र से मुझमें ऐसी ही दृढ़ता उत्पन्न हो गई थी.। इतना ही नहीं, मुझे लगा कि उनका वह दिव्य--दर्शन अपने संकल्प में हमेशा विजयी होता रहेगा। तब मुझे ऐसा भी प्रतीत हुआ कि पूरी सृष्टि का सौंदर्य भी यही हैं। ऐसा लगता है कि सृष्टि इनके प्राकट्य रूपी गहने से सज उठी है। किन्तु यह

वास्तविकता तब पूर्ण रूप से अंतर में और मुखरित हो उठी थी जब वे वापस शाहजहाँपुर चले गये। लगा मानों मन यह वियोग सहन नहीं कर सकता है– बस उस दिव्य–रूप का सानिध्य पाना मन में घर कर गया; तभी से मेरे मन ने मानों पूर्ण रूप से यह स्वीकार कर लिया कि यह दैविक–विभूति ही प्राणिमात्र के आध्यात्मिक–उत्थान के लिए अवतरित हुई है।

3. श्री बाबू जी का हृदय क्या था? मानों प्राणिमात्र के लिए ममता का विशाल सागर था किन्तु उनकी शून्य दृष्टि मानों एक अनोखा दिव्य–संदेश प्रदान कर रही थी। उनके दैविक–स्वरूप की सादगी मानों स्वयं ही मुझसे कह गई थी कि इस दिव्य विभूति का पृथ्वी पर अवतरण मानव मात्र को ईश्वर का साक्षात्कार प्रदान करने के लिए ही हुआ है। इतना ही नहीं उनकी मासूम मुस्कराहट ने मानों इस तथ्य को,कि उनमें साक्षात्कार प्रदान करने के लिए परम–शक्ति पर स्वामित्व है, और भी दृढ़ कर दिया था।

4. श्री बाबूजी द्वारा दी गई प्रथम सिटिंग में ही अंतर में लगा कि अनजाने ही वे मेरे प्राण–प्यारे बन गये हैं। क्योंकि इस बात की भी अनुभूति होने लगी थी कि मानवीय–प्राण तो इन दिव्य प्राणों में समाकर स्वयं को विस्मृत कर चुके हैं। जब उनके पावन–चरणों में मैंने मन से ही प्रणाम किया (उन्हें लड़कियों से पैर धुलाना पसंन्द नहीं था) तो सिर तो मन से ही उनके चरणों पर झुका हुआ था किन्तु मन न जाने कहाँ अचेतन सा था और मैं विस्मृत अवस्था में थी। जब सुधि लौटी तो लगा कि बाह्य–सुधि तो वापस लौट आई थी परन्तु अन्तर–मन स्वयं को सदा के लिए विस्मृत ही नहीं कर चुका था बल्कि उनके चरणों में अर्पण हो चुका था। बस तब यह सत्य स्वयं और भी प्रत्यक्ष हो उठा था कि वास्तव में यही वह दिव्य–विभूति हैं जो मानव मात्र हित प्रगट हुई हैं।

5. वास्तविकता में हालत तो यह थी कि आत्मिक–उन्नति की यह दशा पाकर अब मुझे ऐसा लग रहा था कि मानों कोई मुझे

खरीदने के लिए आया था और बिना मोल के ही खरीद ले गया। खरीद कर वह मुझे किस देश में ले गया तो आज वह दैविक समां अनुभव के रूप में कह रहा है कि वह 'उनका' अपना देश था अर्थात् मेरी सालोक्य की स्थिति थी। इस अलौकिक दर्शन के बाद एक दिन मुझे मेरे मालिक ने अपनी कृपा से 'कुतुब' की परम् दशा में प्रवेश दे दिया और उनके अलौकिक–दर्शन ने उनके विराट में मुझे लय करना शुरू कर दिया। तब वास्तव में मुझे ऐसा लगा था कि मानों मुझे मेरे प्रिय का विराट दर्शन अर्थात् सर्वव्यापी दर्शन मिल गया तभी मैं समझ पाई थी कि यह दिव्य–विभूति अर्थात् बाबूजी कौन हैं।

6. आगे मैंने यह दैविक–अनुभूति पाई कि जब मेरे 'मालिक' ईश्वरीय–केन्द्र के दैविक–क्षेत्र के मुख्य केन्द्र–द्वार पर ले गये तो द्वार पर पहुँचते ही मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मानों ईश्वरीय–साक्षात्कार की दशा में मेरा कण–कण डूब चुका है। इतना ही नहीं, मैंने पाया कि सहज–मार्ग जिसे ग्रहण कर मैं इस दिव्य–दशा तक पहुँची थी, की यात्रा पूर्ण हो चुकी थी और यह मानव–जीवन धन्य हो चुका था अपना लक्ष्य पाकर। मेरे बाबूजी मुझे ईश्वरीय–केन्द्र के क्षेत्र की यात्रा पूर्ण कराकर अर्थात् मानव–जीवन की आध्यात्मिक उन्नति की चरम सीमा पर ले गए थे और फिर मुझे ईश्वरीय–ड्योढ़ी में प्रवेश दे दिया था। मैंने अनेक बार ऐसे मुकाम पर यह भी अनुभव किया है कि उनके मुख की मुस्कुराहट सदैव दिव्य–शक्ति की द्योतक रही है मानों मुझसे कह रही हो कि मैंने तुम्हें यह श्रेष्ठ ईश्वरीय–गति ही प्रदान नहीं की है वरन् इस गति की परम–शक्ति भी प्रदान की है और अब आगे जाना है।

7. आज मैं समस्त के प्रति यह सत्य डंके की चोट पर उजागर कर रही हूं कि सागर की गहराई को तो भले ही नापा जा सकता है परन्तु मेरे बाबूजी के अहेतुक–प्यार की छलकन का कोई पार नहीं पा सकता है। इस पर भी उनके माधुर्य की विशेषता यह थी कि स्वयं सब कुछ लुटा कर मानों समक्ष में शून्य से खड़े थे कि उनके पास अब कुछ नहीं है। यही कारण है कि उनकी पुस्तक

में लिखी हुई दिव्य–श्रेष्ठ, अवस्था–जीरो–या शून्यावस्था, आज प्राणिमात्र के लिए सुलभ हो गई है। क्योंकि अब वे शून्यावस्था के रूप में ही मुझमें प्रवेश कर गये थे तब ही मै समझ सकी थी कि वास्तव मे वे कौन थे क्योंकि उनमें लय होकर ही ऐसी दिव्य एवं श्रेष्ठ–अवस्थाओं में प्रवेश पाया जा सकता है। इतना ही नहीं हर दशा में वे मुझे लय– अवस्था भी देते गये हैं जिससे उस स्तर की पूर्ण शक्ति भी मैं पा सकूँ।

8. मैंने पाया कि श्री बाबू जी, प्रेम की अनुपमेय–अवस्था सालिक (प्रेम को पी जाने वाले) का मानों चलता–फिरता अनूठा स्वरूप ही थे। ज़ज़्बे की दशा अर्थात् प्रेम के फैलाव की दशा को तो मानों वे स्वयं में पी गए थे अर्थात् यों कहिए कि दैविक–प्रेम के फैलाव की दशा भी उनमें लय हो गई थी। कदाचित् यही कारण था कि धरा पर चलते–फिरते उनके डग मानों धरती के स्पर्श से परे रह कर दिव्य–लोक पर स्वामित्व पाये हुये दिव्य–दशा रूपी पृथ्वी पर ही थिरकते रहते थे। एक अलौकिक–दृश्य मैंने यह देखा कि जो भी उनके दिव्य–स्वरूप का दर्शन पाते थे या जो भी इस पृथ्वी पर उनसे सम्पर्क बनाये हुये थे, वे उनसे विलग नहीं होना चाहते थे। प्रिय बन्धुओं; तभी मैं यह रहस्य समझ पाई थी कि यह अलौकिक दिव्य–विभूति ही प्राणिमात्र के लिए धरती पर उतरी हुई है।

9. मैं साक्षात्कार की दैविक–गति में लय होकर इस वास्तविक–तथ्य को भी पहचान गई थी कि श्री बाबूजी महाराज के डिवाइन पिता तो समर्थ सद्‌गुरू श्री लाला जी साहब थे जो इन्हें प्रार्थना द्वारा 'भूमा' से माँग कर पृथ्वी पर उतार लाये थे। आदि–शक्ति ही इनकी वास्तविक जननी थी जिसने इन्हें अपनी दिव्य–गोद (केन्द्र) से उठाकर समर्थ लालाजी की गोदी भर दी थी। फिर भी यदि आप पूछें कि इनका सृजन, लालन–पालन करने वाला कौन था तो मैं तो आज केवल इतना ही कह सकती हूँ कि वह सब तो इनकी मर्ज़ी ही जान सकती है। आज हम अभ्यासियों का पावन बसन्तोत्सव का महान पर्व अपना अर्थ हमें बता रहा है कि मानव–जीवन की लक्ष्य–पूर्ति के साथ ही बस अंह का अन्त हो जाना है।

10. संध्या कहती है कि ओ मेरे बाबू जी! इस युग को चाहे युग निर्माण करने वाला भले ही भूल जाये किन्तु आप हमें कैसे भूल सकते है। क्योंकि आप तो प्राणिमात्र की आत्मिक–दृष्टि के ज्योतिर्मय सितारे हैं। सभी के नेत्रों के तारे भी आप हैं। मेरे बाबूजी, ईश्वरीय–साक्षात्कार की श्रेष्ठ–गति को जब मैंने आपके ही दिव्य–तेज में समाकर अथवा लय होकर प्राप्त किया तब मैं यह दैविक–सत्यता भी समझ पाई कि यह सारा विश्व–मंडल (यूनिवर्स) आपके ही दैविक–तेज में समाया हुआ है तब मैं समझ पाई कि आप ही इसके स्वामी हैं। तब ही मैं इस दैविक–भेद को समझ पाई थी कि आप कौन हैं। आज कौन थे 'वे' प्रश्न का उत्तर सदैव के लिये, समस्त के लिये सरल हो गया है।

याद आती हैं निगाहें, वो प्यार की हमको

1. याद आती हैं निगाहें, वो प्यार की हमको।
रूह को तुमने खरीदा था, याद है हमको।।

2. टेर उनकी ही बुलाती है, इस तरह हमको।
जिलाये रहती है उनकी ही ये कशिश हमको
बनाया खाक, खाकसारी अता की हमको।।

3. सहज मारग में हैं मर–मर के जिये कितनी बार।
लाश को अपने ही काँधों पैं ढोया कितनी बार।
हुआ निसार जमाना था, दिखाया हमको।।

4. अपनें ही पीर को रहती है पीर अपनों की।
अजीब ज़िद थी, आफ़ताब बने ज़र्रे भी।
मुकाम दिल का तभी तो बताया था हमको।।

5. सिहर उठती थी तड़प, याद आये जब उनकी।
कलेजा मुँह को आये, दर्द की चुभन सिसकी।
करम ये 'बाबू' का बख्शीश मिली थी हमको।।

6. प्राणों में प्राणियों के शक्ति बनके छाये तू।
हृदय में ध्यान की गहराइयों में आये तू।
मनायें जश्न मारिफत का दे दुआ हमको।।

7. हम तो नादान दुल्हनियाँ कबीर सी कहिये।
शक्ति के रूप में जीते हैं और क्या चहिये।
भेद समझाने को एहसास दिलाया हमको।।

8. खुदा को खुद से ही, जब प्यार मिल सका ना था।
उतारा इनका सलोना सा रूप खुद का था।
करिश्मा भूमा का साकार दिखाया हमको।।

9. 'संध्या' कैसा हुआ आँखों ने अश्रु पी डाले।
दिल के दरिया ने उमड़ सिन्धु भी सुखा डाले।
'उनका' दीदार दिवाना बना गया हमको।।

व्याख्या

1. मेरे श्री बाबूजी आप की वह प्यार भरी दृष्टि मुझे सदैव याद आती रहती है जो हम सब अभ्यासियों की आध्यात्मिक–उन्नति को सदैव श्रेष्ठता प्रदान करती रहती है, यहीं मेरा अनुभव है। इतना ही नहीं मुझे तो आज ऐसी याद है कि उनकी इस निगाह ने मानो मेरी आत्मा को ही ख़रीद लिया था क्योंकि जब अपनी आ़त्मा को टटोलती थी तो ये ही मिलते थे।

2. मुझे हर समय ऐसा ही लग़ता रहा है कि मानों उनकी प्यार भरी आवाज़ हमें अपने पास आनें का नेह–निमंत्रण सा कुछ इस प्रकार से देती रहती है कि लगता है मानों यह दैविक–आकर्षण ही संसार में मेरे जीवित रहने का मात्र आधार है। इतना ही नहीं मानों उनकी इस अपनाइत ने ही अपनी शरण देकर मेरे अस्तित्व के भाव को समाप्त कर दिया है।

3. सहज–मार्ग साधना में मैंने अपनी (अहं की) मौत का कितनी बार स्वागत किया है। प्रथम तो धरा पर चलते फिरते भौतिक शरीर के मूल की पूर्णावस्था की प्राप्ति पर, दूसरी मृत्यु की सूक्ष्म शरीर के पिघल कर उनमें ही लय हो जाने पर और अन्तिम बार आत्म–तत्व का परमात्म–तत्व में लय हो जाने का दृश्य देख पाने पर। सत्य तो यह है कि संसार में तो अपने भौतिक अस्तित्व को मैं एक जीवित लाश की तरह से ही ढोती रही हूँ। मैं वास्तविक तौर पर तो ऐसी सूक्ष्म एवं गहन–दैविक–स्थिति की अनुभूति को पूर्णरूप से आप सबके समक्ष नहीं रख पा रही हूँ। कैसे लिखूँ शब्द नहीं मिल पा रहे हैं। इतना अवश्य है कि इस श्रेष्ठ–स्थिति की प्राप्ति पर ही मैंने यह सत्य उज्जवल हुआ पाया है कि मेरे श्री बाबूजी पर आजकल ज़माना (युग) ही निसार है क्योंकि समस्त को दैविक–साक्षात्कार की श्रेष्ठ दशा में ले जाने के लिये ही धरा पर इनका दिव्य आविर्भाव हुआ है। ये भी इन्होंने अपनी कृपा से ही मुझे दिखाया है।

4. मैंने इस सत्य की प्रत्यक्षत्ता पायी है कि अपने पीर या सद्‌गुरू को अपनी शरण में आये प्राणीमात्र को श्रेष्ठ आध्यात्मिक–हालत पर

शीघ्र पहुंचाने का दर्द कैसा होता है। शायद तभी तो मन सदैव ही पाया कि समस्त के लिए उनकी इच्छा में एक ही बात समाई रहती थी अर्थात् दृढ़ता थी कि प्राणीमात्र आध्यात्मिकता में आफ़ताब निकले अर्थात् सूर्य की भाँति चमकें। यही कारण था कि उन्होनें हम अभ्यासियों को हृदय में ही यह ध्यान रखनें को बताया था कि ईश्वर का साक्षात्कार करना है, वह तो हमारे हृदय में मौजूद ही है बस हमारे ध्यान से ओझल हो गया है और ऐसा ध्यान रखने से पुनः यह हमारे एहसास में आ जायेगा।

5. यह उनकी दैविक–दृष्टि का ही प्रभाव था कि एक समय आया उनकी याद आने पर साक्षात्कार पाने की तड़प भी मानों सिहर उठती थी। जानते हैं क्यों? मात्र इसलिये कि इतना भी सब्र नहीं रहता था कि मिलन के लिये जीवन जीवित रह सके। छाती को दबाये रहती कि कहीं इस याद से वह फट न जावें। कैसे वह दिन कटे आज जब यह याद आती है तो लगता है कि अगर वे न संभालते तो यह जीवन समाप्त हो जाता। असीमित याद जीवन की सीमा की कैद से स्वतन्त्र हो जाना चाहती थी। दर्द तो दूर रहा उसकी चुभन को भी सहन कर पाने की भला क्षमता किसमें है। लगता था कि कलेजा मुँह को आ जायेगा। लेकिन यह तो मेरा रोम–रोम चिल्लाकर कह रहा है कि यह दिव्य–स्थिति मात्र मेरे बाबूजी महाराज की कृपा से मानों इस गरीब को दैविक बख्शीश के रूप में मिली थी।

6. ओ मेरे बाबूजी! आज आपसे प्रार्थना है कि प्राणीमात्र के प्राणों में अपनी प्राणाहुति शक्ति प्रदान कर दें। आपका पावन–आविर्भाव शक्ति बनकर जब समस्त में समा जावेगा तभी अभ्यासियों के ध्यान में इतनी गहराई आ जायेगी कि ईश्वर समस्त हृदयों में विद्यमान है, इस अनुभूति में डूबे हुए वे आध्यात्मिकता का महा–उत्सव मनायेंगें। आप हमें ऐसी ही दुआ प्रदान करें।

7. मुझे आश्चर्य है कि कभी हमने कबीर के इस पद का अर्थ अपने बाबूजी से पूछा था कि "मेरा राम मैं इनकी दुल्हनियाँ"। उसका अर्थ उन्होंनें आज मुझे ऐसी दशा की अनुभूति के रूप में जो दिया

है मैं वही लिख रही हूँ। भाई हालत क्या है, मानों अपने अस्तित्व से नितान्त अनभिज्ञ हुई मैं कहाँ हूँ और क्या हूँ ऐसी बेहोशी में भी बेसुध हुई दशा में मुझे इन्होंने दिखाया कि मानों यह हालत कबीर के "राम की दुल्हनियाँ की है" कि दैविक दशा की अनुभूति मानों समस्त में व्याप्त ईश्वरीय–शक्ति राम से मिली राम की दुल्हनियाँ के रूप में। इस दिव्य–अनुभूति के अतिरिक्त भला मुझे चाहिये भी क्या था कि मेरे राम की अपनी शक्ति के ही रूप में मैं ही व्याप्त थी। इस दिव्य–अनुभूति के अतिरिक्त भला मुझे चाहिये भी क्या था कि मेरे राम ने अपनी शक्ति के रूप में मुझे अपना लिया था। यही भेद था उस हालत का जो इन्होंने मुझे इस रूप में प्रदान करके समझायी थी। सच मानिये मैं तो निहाल हो चुकी थी, इस दिव्य–अनुभूति में डूबकर।

8. ओ मेरे बाबूजी! मुझे तो कुछ ऐसा महसूस हो रहा है कि मानों ईश्वर को जब स्वयं से प्यार नहीं मिल पाया क्योंकि वह मात्र एक और अलौकिक था तभी शायद प्यार पाने के लिये ही उन्होनें आपकी दिव्य विभूति को सलोना स्वरूप देकर पृथ्वी पर उतारा है। इतना ही नहीं उनमें श्री लाला जी की प्रार्थना स्वरूप भूमा की परम् आदि शक्ति प्राणी मात्र के हित साकार हो उठी है। मानों मेरे बाबू जी की दिव्य–विभूति के रूप में भूमा का दैविक–चमत्कार ही चमत्कृत हो गया है। मैं तो उस अवणर्नातीत का वर्णन अब नहीं कर पाऊँगी।

9. ओ बाबू जी! आपकी 'संध्या' तो केवल इतना ही कह सकती है कि आपके ऐसे अलौकिक–दर्शन की दैविक दशा को पाकर मेरी यह हालत हो गई है कि मानों उस दिव्य–स्वरूप के दर्शन के रस ने मेरे अश्रुओं अर्थात् अंखियों में भरे रस को पी डाला है। इतना ही नहीं ज़ी में उमड़े हुए प्रेम के दरिया ने मानों उस दैविक–रस भरे सिंधु को भी अपने में लय कर लिया या यों कहियें कि वह सिंधु मुझमें ही समा गया था। वास्तव में आपका वह दैविक–साक्षात्कार मुझे दीवाना बना गया था।

भूल गई मैं तो घर अपना रे

1. भूल गई मैं तो घर अपना रे।
सपन की ओढ़नी में जागे सपना सा रे।।

2. याद आये उनका था पीछे मुड़के देखना।
विदा देते ईश के पसारे का पिघलना।
ममता का सागर मानों इनमें ही समाया रे।।

3. सदियों की प्रतीक्षा बोली वतन की तैयारी कर।
शून्य ने चादर ओढ़ी जा बैठा डोली पर।
संग में धीरे से मैं भी पीछे हो ली रे।।

4. पैंछर बताये थी, कोई साथ में हमारा है।
ज़िन्दगी के जीने का इशारा कितना प्यारा है।
पलकों की पालकी से उतरी मैं अकेली रे।।

5. समझेगा कौन पालकी का पल्ला कोरा था।
लागे था ऐसा कोई आया औ गया न था।
आँचल की कोर पे लिखा था तू है नाहीं रे।।

6. देख रही वैभव आदि–शक्ति की हवेली भी।
स्वजन से द्वारे सात लागे थी नवेली भी।
मात उज्जवलता को भी दे रही अंधेरे से रे।।

7. आदि–छवि का आईना भी, तेरा मुख निहारे है।
पैरें थी हस्तियाँ ये राज़ कितने न्यारे हैं।
भौचक है लेखिनी अब आगे कैसे लिक्खे रे।।

8. "लाला" तेरे छौने का ये अद्‌भुत कमाल है।
'स्वामीजी' बोले ये तो भूमा का गोपाल है।
कौन किससे पूँछे हस्ती कैसी है ये आई रे।।

9. जुदा है ज़ात की झलक का चलन भी यहाँ।
आफ़ताबे मारिफ़त की गरिमा भी लय है यहाँ।
साहिबी भी इनकी औ समाँ भी इनका फैला रे।।

10. 'बाबूजी' बोले 'संध्या' बेला विदा की कर।
चौंका संकल्प तब था देखा इन्हें जी भर।
आरजू भी सिसके वख़्त लाये तू ये सब का रे।।

व्याख्या

दिव्य–साक्षात्कार देने के बाद आज मेरे बाबू जी ने मुझे मुख्य–केन्द्र की चौखट (द्वार) पर लाकर खड़ा कर दिया है। मानो वहाँ उन्होंने ही मुझे डिवाइन–चेतना प्रदान करके बताया कि तू अब महा–पार्षद की दशा में खड़ी है, अब सामने अपना वतन निहार ले। तब मुझे लगा कि मैं तो अपना डिवाइन–वतन भी भूल चुकी थी और मुझे लगा कि मानों किसी शक्ति–रहित परम शक्ति ने यानी फोर्स–लैस–फोर्स ने मुझपर स्वप्न की ओढ़नी डाल दी थी कदाचित् इसलिये कि यहाँ दशाओं की अनुभूति कर पाने का चोला भी मेरे पास शेष नहीं बचा था फिर कैसे लिख पाती यह दैविक नज़ारा। अब लेखनी भी भौचक्केपन को त्यागकर मुख्य केन्द्र भूमा के द्वार में मानो इस डिवाइन–आदि–शक्ति की ओढ़नी के भीतर से छनकर आती हुई सात रिंगस् में प्रवेश पाकर (मेरे बाबूजी जो भी मूल स्रोत के सौन्दर्य एवं क्षमता का ज्ञान प्रदान करेंगें) उसे लिख पाने में जरूर समर्थ हो सकेगी, किन्तु ऐसे कि जैसे स्वप्न की ओढ़नी में से स्वप्न छलक कर आ रहा हो।

1. अब मुझे लगने लगा था कि समक्ष में मेरे अपने आदि–वतन का ही पसारा व्याप्त है। एक अद्‌भुत रहस्यमय–तथ्य यह भी समक्ष में था कि वह आदि–शक्ति अर्थात् मूल स्रोत तो नितान्त आवरण हीन था कदाचित इसलिये उसने मुझपर अपनी आदि छवि को समक्ष में लाते समय बीच में दिव्य–पारदर्शी स्वप्न की ओढ़नी दी थी ताकि मैं स्थिर रहकर वह अजीबोग़रीब नज़ारा निरख कर लिख सकूँ। इस गहन एवं मूक डिवाइन के विषय को मात्र मेरे बाबूजी महाराज की कृपा ही समझा पाने की क्षमता के साथ ही उस शक्ति को प्रदान कर पाने में गौरवान्वित है आज यह सिद्ध भी हो रहा है। अब स्वप्न की ओढ़नी का स्वप्न उसकी ही जुबानी सुनिये।

2. स्वप्न की ओढ़नी से छनकर आता हुआ यह अन्तिम–सत्य का अनुपम एवं अद्‌भुत रहस्य जो मेरे समक्ष है आज उसने ही मुझे दिखाया है कि आज जब मेरे मालिक दिव्य–ईश्वरीय–साक्षात्कार की परम–दशा में लय करके मुझे भूमा के वैभव के देश की महायात्रा समाप्त करके अपने दैविक–संकल्प में समाहित मेरी identity को आदि–शक्ति 'भूमा' के केन्द्र रूपी हवेली के मानों सप्त द्वार यानी सात रिंगस् में बेधड़क होकर ले चले तब मुझे लगा कि मानों यह इनकी अपनी ही हवेली है। तभी मुझे याद आने लगा वह पीछे का दृश्य कि कैसे जब दिव्य–ईश्वरीय साक्षात्कार देने के बाद मेरे बाबूजी मुझे 'भूमा' के वैभव के देश अर्थात् सेन्ट्रल–रीजन में ले चले थे तब उनके विछोह में ईश्वरीय ममत्व भी मानों पिघल उठा था अर्थात् ऐसा लगा था कि ममता में ईश्वरीय–आँचल अर्थात् ईश्वरीय पसारा भी भीग उठा था। तब मुझे लगा था कि बाबूजी भी ईश्वरीय–ममता के कारण पीछे मुड़मुड़कर देखते रहे जब तक कि वह दिव्य–दृश्य अदृश्य नहीं हो गया। तभी मैनें इस तथ्य को भी स्पष्टतः पा लिया था कि दैविक ममता का साथ ईश्वर तक ही होता है। इसके पश्चात् तो दैविक–वैभव एवं 'भूमा' के केन्द्र की शक्ति का ही पसारा समक्ष में व्याप्त होता है और ईश्वरीय ममता के स्थान पर दिव्य विभूति के प्यार का पसारा ही व्याप्त मिलता है। ईश्वरीय–ममता का सागर भी ईश्वर में ही समाया रह जाता है और हमारे बाबूजी आगे बढ़ा ले जाते हैं।

3. मुझे अब ऐसा लग रहा था कि सदियों से दिव्य–साक्षात्कार पाने की जो मेरी आंतरिक–प्रतीक्षा थी वह मानों अब मुझे आवाज़ देकर कह रही थी कि अब समय आ गया है कि तू वतन को लौट चलने की तैयारी कर ले किन्तु तभी यह क्या? मैंने देखा कि मालिक मुझे ले चलें इससे पहिले ही उनके द्वारा उतारी हुई आध्यात्मिक–उन्नति की चरम सीमा की दिव्य–गति ज़ीरो, अर्थात् शून्य गति ने मानों खुद को उनके ही समर्पित कर दिया था और मुझे लगा कि मानों वह भी मेरे साथ वतन की वापसी के लिये तैयार होकर अनन्य–गति की डोली पर जा बैठी है अर्थात्

मालिक मैं लय हो गई थी तभी तो डोली तो चल दी और मैं? उनमें ही पूर्णतया लय हुई उनके साथ ही धीरे से मानों उनके पीछे चल दी।

4. अब कहीं कोई स्पन्दन न था, अपने होने के होश का गुमान भी गायब हो चुका था किन्तु कभी–कभी मानों किसी के साथ होने का मौन–स्पंदन (आहट) मुझे यह बता जाता था कि मेरा जीवन–सर्वस्व मेरे साथ में हैं और यह भी मेरे लिये कितना प्यारा इशारा था–जानते हैं किस बात का? कि तू मेरी है, मैं तेरे साथ हूँ कहीं जीवन जी रहा है, बस यह लाइफ–लैस–लाइफ अर्थात् अंतिम अवस्था थी और यह इशारा भी था इस तथ्य का कि यह दैविक दशा जिसमें होकर मैं गुज़र रही थी जो कि उनकी **powerless-power** के द्वारा संचरित थी। इतना ही नहीं इस दैविक–गति की श्रेष्ठ अवस्था का मानों उन्होंने यह रहस्य भी मेरे समक्ष स्पष्ट कर दिया था कि इस दशा में मानों अपने पलकों की पालकी पर, अर्थात् अपनी निगाह में लेकर ही वे मुझे अंतिम–सत्य की ड्यौढ़ी यानी वतन में प्रवेश देने के लिए लाये हैं। पलकों की पालकी क्या थी, यह भी तो जानना आवश्यक है ताकि किसी को भी कभी कोई तथ्य जानने के लिये कोई बात छूट न जाये। यह लाजवाब पालकी थी उनके प्यार की निगाहें जिनमें लय करके वे मुझे यहाँ 'भूमा' के द्वार तक लाये थे, जिसमें से मैं वतन में मानों अकेली ही उतरी थी। भला बताइये कि क्या यह युग उनके आविर्भाव का ऋण भुला सकेगा। मेरा तो यह विश्वास है कि युग सदैव मेरे बाबूजी के चरणों में ही लिपटा रहना चाहेगा।

5. अब पाठकगण ही बताएगे कि भला उपरोक्त अनन्त दशा के तथ्य को उनके समझाये बिना कौन समझ सकता है। किस लेखनी में साहस है कि श्रेष्ठ गति के तथ्य की गहराई को बिना उनके हस्त–कमलों का स्पर्श पाये स्पष्ट कर पाता। अब आगे गति–विहीन गति को भी कौन गति प्रदान करता। इस अंतिम सत्य को कि पालकी में बैठने वाली गति तो शून्य या जीरो थी अथवा श्री बाबूजी द्वारा लिखित नथिंगनेस की हालत थी। जिससे वे मुझे अपनी निगाह में लेकर पलकों में समेट कर वहां

की परम–गति में विलीन करके ही लाये थे। डिवाइन कैरेक्टर को मान देते हुए और अपने संकल्प को पूर्ण करने में कृत–संकल्प बाबूजी कुछ इस तरह से मुझे यहाँ लाये हैं कि मुझे यहीं प्रतीति रही है कि इस अनुपम पालकी का पल्ला कोरा ही था। यहां तक मानों कभी कोई न आया था और न गया था क्योंकि यहां तो डिवीनिटी का स्पन्दन–हीन–साम्राज्य ही व्याप्त था और जब कभी बाबूजी ने मुझे यहाँ का होश दिया भी तो होश रूपी आँचल पर मानों यही लिखा था कि 'संध्या' तू नहीं है। कुछ अजीबोग़रीब हालत थी कि उन्होंने जो कुछ मेरे होश को समझा दिया था, वह समझता गया था। मुझे उसने भी कुछ नहीं बताया था।

6. अब समक्ष में आदि–शक्ति के द्वार पर, महापार्षद की परम–गति में नहाई हुई मुझे जब समक्ष में मालिक ने जो अनुपम दृश्य लखाया था उसे देख पाने के लिये उनकी ही निगाह मानों मुझे मिल गई थी और वही निगाह मेरी लेखनी में भर रही है, जिससे उस दिव्य–दृश्य को उतार पानें का इसका प्रयास सफल हो सके। समक्ष में आदि शक्ति 'भूमा' का मानों वैभव फैला था। इसके सातों प्रवेश द्वार यानी सेविन–रिंग्स की दिव्य–गति विहीन गति में जब मालिक एक एक करके प्रवेश देकर ले जा रहे थे तो मानों मुख्य–केन्द्र 'भूमा' की हवेली के गर्भ–द्वार तक यह रिंगस् हमारे स्वजनों के समान मानों जानी पहचानी सी लग रही थीं। मानो सब कुछ नई नवेली सा लग रहा था। यहाँ ही मालिक ने अपनी पुस्तक में लिखी हुई दिव्य–तम–अवस्था का भान दिया जिसके बारे में लेखनी इतना ही बोल रही है कि यह श्रेष्ठ तम्–अवस्था किसी भी उज्जवलता को मानों अपने से चैलेन्ज कर रही थी।

7. ओ मेरे बाबू जी आपकी कृपा से आज इस अनूठे–सत्य की झलक मैं स्पष्ट पा रही हूँ कि आदि–शक्ति रूपी आइने में मात्र आपका ही मुख दरस रहा है। कारण भी स्पष्ट ही है कि मुझे लगता है कि इससे यानी मूल–स्रोत 'भूमा' से रचना के

बाद मात्र आपका ही मुखड़ा उभर कर धरा पर अवतरित हुआ है, नहीं तो यह आदि से अब तक अनन्त–शक्ति का केन्द्र अछूता ही रहा है। ऐसा भी लग रहा है कि आपके मुखड़े पर बलिहार होकर आदि–छवि मानों आपके मुखारबिन्द में अपनी ही अनूठी–छवि निहार रही है। इतना ही नहीं कदाचित् ब्रायटर–वर्ड में पैरती हुई दिव्य–हस्तियों का न्यारा दिव्य–रहस्य भी अब ही प्रगट हो पाया है। मेरी लेखनी भी अब भौंचक होकर ठहर गई है कि अब आगे का और कैसे लिखे। कौन समझ पायेगा यह दैविक रहस्य? अब तक मात्र बाबूजी की ही अहेतुकी कृपा प्राणिमात्र को यहाँ तक ला सकने की क्षमता में निपुण है। उनकी समर्थ दिव्य–शक्ति ने अपनी इस बिटिया को यहाँ पहुँचाकर सिद्ध भी कर दिया है कि अब 'भूमा' का द्वार समस्त के लिये सुलभ है।

8. कैसा अनुपम और अपने में यह अनूठा रहस्य प्रकट हो गया है कि आदि–गुरू समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी साहब का ही यह अद्भुत कमाल उनके ही लाड़ले श्री बाबूजी महाराज का ही है जोकि प्राणियों के लिये आज अन्तिम–अवस्था की प्राप्ति भी सुलभ हो गई है। किन्तु यह क्या? मानों स्वामी विवेकानन्द जी का मधु–मिश्रित सत्य बोल उठा है कि बेटी यहाँ यह लालाजी का लाल नहीं है वरन् इन्हें भूमा के गोपाल (अंश) के रूप में ही जाना गया है। अब भला जब ब्राइटर–वर्ड की महान हस्तियों का यह हाल है तो फिर कौन बता पायेगा कि यह कितनी महत् हस्ती है जो श्री बाबूजी के रूप में पृथ्वी पर हमारे समक्ष प्रकट है।

9. सच तो यही है कि यहाँ ज़ात अर्थात् मूल श्रोत की झलक का मैंनें चलन नितान्त अलग ही पाया है। यहाँ आफ़ताबे–मारिफ़त अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान के सूर्य की गरिमा–गौरव तथा महत्व सभी का अस्तित्व भी लय हो गया है। यहाँ तो बस यही लग रहा है कि मानों इस अनन्त–देश के मालिक भी श्री बाबूजी ही हैं और यहाँ समस्त वातावरण में मानों इनकी ही दिव्यता का स्वामित्व छाया हुआ है।

10. यह कैसा दिव्य रहस्य है कि मेरे बाबूजी महराज ने वतन में पहुँचाकर मुझे वहां स्थित कर दिया तब बोले कि 'संध्या' अब विदाई की बेला आ गई है तब तो मैं चौंक पड़ी कि यहाँ से विदाई किसकी होगी परन्तु अब चौंकने की बारी थी मालिक के दैविक संकल्प की। कैसा मार्मिक दृश्य था जबकि दैविक संकल्प नें मानों बाबूजी महराज की ओर जी भरके देखा था क्योंकि वापिस तो उसे ही लौटना था क्योंकि मुझे लक्ष्य तक पहुँचाकर उनका संकल्प पूर्ण हो गया था। इधर अभ्यासी की तलाश (आरजू) भी पूर्ण हो चुकी थी सो उसे भी वापस लौटना था विछोह में दोनों ही सिसक कर मानों कह रहे थे कि ओ बाबूजी! आप सबके लिये पुनः यह समय लायें ताकि उन्हें आपके दिव्य–चरण को निहार पाने का सौभाग्य पुनः प्राप्त हो।

यादों ने किया याद

1. यादों ने किया याद जभी आप आ गये।
मुश्किल पड़ी थी जब उन्हें हम याद आ गये।।

2. यूँ चल रहा था सिलसिला, कश्ती डुबोने का।
ख़ुद नाख़ुदा डुबो रहा, कश्ती किनारे ला।
पायेंगे कहाँ अब हमें, जब आप आ गये।।

3. सागर समूचा पी गये, अनन्त फैज़ का।
चमके था आफ़ताब, बाबूजी की मौज का।
तम था मगर तमीज़, उजेले की पा गये।।

4. मुस्काया कोई सत्य–पद की ओर से ऐसे।
भूमा की शक्ति का वो, सम्राट हो जैसे।
बलिहार ज़माना है, करम इनका पा गये।।

5. संकल्प बाबूजी का था अब पूरा हो रहा।
वैभव महाप्रलय का था, हमको बुला रहा।
थी मौन धरा भी चरन जब इनके आ गये।।

6. लय हो गया था दर्श में वो, खुद ही खुदा था।
छवि सामने थी उनकी अरू ये कैसा मिलन था।
ऐसा लगे था सादगी का ताज़ पा गये।।

7. कैसा है ये नसीब आपके गुलामों का।
हर श्वाँस का आना लगे, पैग़ाम आपका।
हैं ज़िन्दगी के रूप में हम तुमको पा गये।।

8. 'संध्या' तुम्हें बतायें, क्या हम पै गुज़र गई।
मुस्काये भूमा में जो वो सुध ऐसी खो गई।
अनुपम मिलन का मानों हम, श्रृंगार पा गये।।

व्याख्या

किसी की याद जब 'उसी' की यादों से भर जाती है तब जो दशा होती है उसी का वर्णन उक्त गीत में किया गया है।

1. मेरे बाबूजी! अब तो मैं याद की ऐसी विभोर–अवस्था पा रही हूँ कि आप जब भी मुझे याद आते हैं तो ऐसा लगता है कि आपकी याद नहीं बल्कि आप स्वयं ही मेरे समक्ष प्रत्यक्ष हो गये हैं। मुझे मालूम है कि मुझे ऐसा क्यों लगता है क्योंकि याद में आप इस तरह से भर गये हैं या यूँ कहूँ कि बस गये हैं कि मैं अब इसे याद नहीं कह सकती हूँ बल्कि यह कहना सत्य लग रहा है कि आप मुझमें प्रत्यक्ष हो गये हैं। कदाचित् यही कारण है कि आपको जब मेरी याद आती है तो आप मुश्किल में पड़ जाते हैं क्योंकि संध्या तो आपकी हो गई है। आप इसमें इस तरह से प्रत्यक्ष हो उठे हैं कि अब आप अपने से अलहदा इसे पा ही नहीं सकते हैं।

2. मेरे बाबूजी! आपने जिस तरह से सहज–मार्ग–साधना में मुझे भिगोया है तो मुझे बराबर ही महसूस होता रहा है कि मानों आप मेरी नाव (मुझ) को आध्यात्मिकता के दिव्य–सागर में डुबो (लयकर)देने की कोशिश में लगे हुये हैं। सच पूछें तो कैसा विचित्र यह तमाशा था कि जिसके हाथों मैंने अपने जीवन की नाव को भव–सागर पार करने हेतु सौंपा था उसी खेवनहार ने मेरी कश्ती को भव–सागर से पार करके अब दिव्य–प्राणाहुति के सागर में गोता देते हुये आखिर पूर्णतया डुबो ही दिया अर्थात् अपने में ही लय कर लिया तो फिर ओ मेरे बाबूजी! जब आपने स्वयं में ही अपनी बिटिया को लय कर लिया तो अब आप इसे कैसे और कहां पा सकेंगे। यही आज आपकी मुश्किल बन गई है कि मरण (लय होने) के बाद कोई जीवित नहीं हो सकता है तो फिर आप मुझे कैसे पा सकते हैं। बस अब तो आप ही आप हैं।

3. मैं कैसे कहूँ उस अनुभूति के बारे में कि जो आध्यात्मिक–उन्नति के श्रेष्ठतम् शिखर पर पहुँचते–पहुँचते मुझे बार–बार होती रही

थी। ऐसा लगता था कि मानो श्री बाबूजी की प्राणाहुति का अनन्त–सागर ही मैं पी गई थी। उस समय मुझे ऐसी अनुभूति होती थी कि मानों मेरे बाबूजी का मौन (इच्छा) ही दिव्य–सूर्य (आफ़ताब) की भाँति मुझमें प्रकाशित हो उठा है। इतना ही नहीं वहाँ मैंने पाया कि मानों तम–अवस्था ही व्याप्त थी जो अपने बाबूजी के मौन द्वारा आदि (दिव्य–प्रकाश) की जानकारी मुझे दे रही थी।

4. अब आगे गीत की पंक्ति जो गुनगुना रही है इसकी बात सुनिये। अनुभूति ने जब मुझे बताया कि साक्षात्कार तक की यात्रा तो पूर्ण हो गई है तब दैविक–चेतना के प्रकाश में मैंने स्वयं को 'सत्य–पद' पर प्रतिष्ठित पाया। (सत्य–पद, जो सैन्टर–रीजन का प्रवेश–द्वार है एवं मानव–पहुँच की आध्यात्मिक–गतियों की प्राप्ति की चरम सीमा है)। किन्तु सत्य पद पर प्रतिष्ठित होकर भी आंखें प्रवेश–द्वार पर ऐसे लगी थीं कि मानों अभी मेरा प्रिय इस द्वार से मुझे अपने देश में ले जाने के लिये आता ही होगा। तभी अचानक; श्रेष्ठ–द्वार से मुस्कुराता हुआ मेरे बाबूजी का दिव्य–चेहरा जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी प्रकट हुआ मानों वह दिव्य–तेजस्वी–मुख कह रहा था कि भूमा की परम–शान्ति का सम्राट वही है। सच तो यही है कि यह सच बारम्बार दुहराना पड़ता है कि हम धन्य हैं कि श्री बाबूजी महाराज के ऊपर बलिहार हुये इस जमाने में आज हम उनकी ही दिव्य कृपा को पा रहे हैं।

5. किन्तु उन्हें चैन कहाँ; जब 'वे' मुझे सैन्टर–रीजन में ले गये तो वहाँ का दैविक–नज़ारा तो अनुपम था ही किन्तु वहाँ का वैभव कुछ ऐसा था कि मानों मेरी अपनी महाप्रलय का ही नज़ारा समक्ष में व्याप्त हो। अर्थात् अहं से शून्य हुई गति का ही पसारा था। इतना ही नहीं एक रहस्य तब यह भी मुझे स्पष्ट हो गया था कि यहाँ की श्रेष्ठ–गति मुझे इस प्रकार से अपने में समेट रही थी कि उस दिव्यानुभूति में मैंने पाया कि मानों मेरे बाबूजी के चरणों को पाकर कदाचित् भौंचक होकर वहाँ का समां मौन हो गया था।

6. कैसा अचम्भा था लगता था कि ईश्वर–दर्शन में विभोर होकर जो उनमें डूब चुका था वह तो स्वयं ईश्वर ही था किन्तु मालिक ने जिसे ईश्वरीय–परम–गति में लय करके निकाल लिया था वह तो उनकी यह बिटिया ही थी। अभ्यास–काल में तो मैंने समझा था कि ईश्वरीय–साक्षात्कार की दशा में मैं ही विभोर हुई थी किन्तु आज इस गीत की व्याख्या लिखते समय जो गति समक्ष में हैं उससे यह प्रतीत हो रहा है दर्श में हमेशा ही लय रहने वाला तो खुद ईश्वर ही है क्योंकि वह ख़ुद है लेकिन उसमें ख़ुदी नहीं है। मुझे तो बाबूजी, ईश्वरीय–गति में मानों नहलाकर और शक्ति में लय करके ही निकाल लाये थे और फिर मुझे मानव के आदि–पद अर्थात् सत्य–पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था तभी मैंने वहाँ अनुपम अनुभूति यह पाई थी कि मानों मेरे शीश पर बाबूजी ने सादगी की दशा का ताज़ पहिना दिया था तभी मैंने यह दैविक–तथ्य भी उज्जवल हुआ पाया कि जो छवि मेरे समक्ष थी वह मेरे बाबूजी में ही मिलन का पावन एहसास था। मेरी समझ में नहीं आता कि तब तो ईश्वरीय–साक्षात्कार का क्षणिक सा ही एहसास था किन्तु फिर लगा कि यह तो मानों उनका ही साक्षात्कार और उनमें ही मिलन था। तभी तो शायद कबीर को लिखना पड़ा होगा कि "गुरू गोविन्द दोनों खड़े काके लागूँ पाँव, बलिहारी गुरू आपने, जिन गोविन्द दिया मिलाय"।

7. न जानें क्यों आज मेरी लेखनी इस सत्य को प्रत्यक्ष करने के लिये मचल उठी है कि हम सब अभ्यासी उनके (श्री बाबूजी के) ही हो चुके हैं, कभी हमारा सा अर्थात् इनके गुलाम या बालक होने का सौभाग्य किसी ने पाया है? क्योंकि यह दैविक–सत्य अब स्पष्ट एवं अनुभव–गम्य हो गया है कि हमारी हर श्वाँस मानों समस्त के लिये उनके नेह–के निमंत्रण सी ही प्रतीत होती है। इतना ही नहीं हमें तो ऐसा लगता है कि अब हमारे अंतर में जीवन के रूप में हमारे श्री बाबूजी ही समाये हुये हैं।

8. अब तो पाठक–गण के समक्ष मेरी लेखिनी मानों अपनी अनुपम दशा को भी लिख पाने में असमर्थ हो गई है। जानते हैं क्यों? क्योंकि सत्य–पद से लेकर जब बाबूजी ने मुझे सैन्टर–रीजन में प्रवेश दिया, पुनः भूमा के सप्त–द्वार अर्थात् सात रिंग्स के सन्मुख मुझे लाकर खड़ा कर दिया तब एक बार फिर मैं अवाक् रह गई थी। किन्तु तब अद्भुत एवं अनुपमेय भूमा के केन्द्र से मेरे श्री बाबूजी की मुस्कान की मधुरता ने मानों मेरी सुधबुध को कुछ इस तरह से हर लिया था कि वहाँ प्रवेश के लिये मानों मुझे अनुपम मिलन के योग्य दैविक–श्रृंगार बख़्श दिया हो।

हमारा त्यौहार

1. आज भर आई हैं अँखियां याद में त्यौहार की,
बज उठी शहनाइयाँ दिल में हैं तेरे प्यार की।।

2. आ रही है झलकियॉ रह–रह के तेरी याद बन,
होश कहता कैसे खोये ये मधुर–क्षण आज मन,
लागे है ऐसी मधुर–छवि, सामने है आपकी।।

3. है थिरकती प्रकृति खुद को भूल खुशियों में मगन,
धरा चरणों में चढ़ाये है तेरे श्रद्धा–सुमन,
भूमा ने वैभव लुटाया जन्मदिन में आपकी।।

4. नूर की रंगत जभी पहिचान मेरी बन गई,
दर्द की मासूम आँखें दर्श तेरा पा गईं,
झूम उठा था समां आँचल में खोये आपकी।।

5. पी गये दृग–सिन्धु कैसा भोर था तेरे जन्मदिन का
छवि तुम्हारी सामने चिलमन सजा है फैज़ उनका,
लेखिनी भी कह न पाये बात अनहद पार की।।

6. पा गये अपना वतन अब शक्ति तू ही है हमारी,
भा गई तक़दीर तेरी नज़र को अब है हमारी,
जिन्दगी भी जी रही है मौज बनकर आपकी।।

7. जी लगी पूँछे है हमसे भूल मत जाना हमें,
याद की अँखियां छलक कहतीं भुलाना मत हमें,
हम खड़े एकटक हों जैसे शम्मा तेरे प्यार की।।

8. दिव्य–अनुपम थी घरी जब केन्द्र ने खोला था द्वार,
पुरूष भी विस्मित हुआ था देख लाला का वो प्यार,
रूख़ से जब पर्दा हटाया दिव्य–छवि ने आपकी।।

9. आपकी मुस्कान से उत्सव सरसता ये रहे
युग तेरी यादें संजोये, पुष्प बरसाता रहे,
प्रार्थना संध्या रहें नज़रों में बस हम आपकीं।।

व्याख्या

1. न जाने क्यों आज यह गीत लिखते समय मेरी आँखें भर आई हैं। आश्चर्य तो यही है कि न तो आँखों को मालूम है और न मुझे ही ज्ञात है कि आखिर ये आँखे आज क्यों भर आई हैं। पता यही लगा कि कदाचित् युग (समय) उन्हें (श्री बाबूजी के) समक्ष में मंच पर बैठे देखना चाह रहा है। वह भी इसलिये कि समय उनकी दिव्य–मौजूदगी का एहसास तो पा सकता है परन्तु उसके आँखें नहीं है जो उन्हें देख सकता। शायद उसी याद को लेकर अपने अश्रुओं को उसने मेरी ही आँखों में आज उनके इस पावन दिव्यावतरण के हमारे त्यौहार के दिन के लिये ही संजोया है यही कारण है कि मैं महसूस कर रही हूँ कि आज के पावन–पर्व पर हज़ारों अभ्यासियों के दिल में उनके प्यार में भरी खुशियाँ मानों शहनाइयों के रूप में उनका गुणानुवाद गाने के लिये बज उठी हैं।

2. आज आपके साथ बिताये समय की यादें एक–एक करके झलकियाँ बनकर मेरे सामने आ रही हैं। आज यादों के मधुर–क्षणों को मेरा होश किसी भी तरह से खोना (भूलना) नहीं चाहता है। मेरे भाइयों ऐसा क्यों है यह भी तो आप जानना चाहेंगे तो सुनिये उनकी यादों के मधुर क्षणों ने मानों उनकी उस मधुर–छवि को ही आज मेरे सामने लाकर खड़ा कर दिया है।

3. कैसा सलोना दृश्य है कि आज मानों कुल प्रकृति ही खुशियों में मगन होकर नाच रही है। पृथ्वी मानों अपने हृदय पर खिले पुष्पों को आपके चरणों में श्रद्धा–सुमन की तरह अर्पण कर रही है। क्या कहने हैं आज के क्षणों का और समय के सौभाग्य का कि इनके जन्मदिन के पावन पर्व पर ट्रान्समिशन के रूप में मानों भूमा (अल्टीमेट) आप अपना खज़ाना ही लुटा रहा है।

4. हे बाबूजी! मुझे याद है कि जब मेरा कुल स्वरूप आपके दैविक–तेज में ही समाकर मानो तेरा नूर (दिव्य–तेज) ही बन गया था तभी मेरी दर्शन की चाह में डूबी मासूम भोली आँखें आपका दिव्य–दर्शन पा सकी थीं और उस समय तो मैंने पाया कि सारा समां

(वातावरण) ही खुशी से झूम उठा था जब आपके नेह के आँचल में मैं हमेशा के लिये खो गई (लय हो गई) थी।

5. क्या कहूँ और कैसे कहूँ कि देखते ही देखते मानों आज मेरे नेत्र उस दैविक–दर्शन के सागर को ही पी गये अथवा यों कहें कि 'बिन्दु में सिंन्धु ही समा गया है' भला आपके जन्मदिन का आज यह कैसा सबेरा है। इतना ही नहीं आपकी सुहावनी छवि तो मेरे सामने है और समस्त–वातावरण मानों आपकी प्राणाहुति के प्रवाह रूपी घूँघट–पट की ओट में समाया हुआ आपके दिव्य–फैज़ से सज उठा है। आज भला इस लेखिनी की क्या मज़ाल है जो दर्शन से भी परे, अनहद (अनन्त) की गति का वर्णन कर पाने को उठ सके।

6. ओ मेरे मालिक! आपकी कृपा एवं पावन–प्राणाहुति–धारा का हृदय में निरंतर प्रवाह मिलते रहने के कारण ही मैं आज अपने दैविक–वतन को पा सकी हूँ। अब तो ऐसा लगता है कि आप ही हमारी शक्ति बन गये हैं। यह मात्र इसलिये ही हुआ है कि आपने ही हमारी तक़दीर (भाग्य) को दैविकता से सँवार कर अपनी कृपा से सजा दिया है इसलिये मुझे ऐसा लगता है कि शायद आपकी दयामय दृष्टि को हमारी तक़दीर भा गई है। और मेरी ज़िन्दगी। इसका क्या पूछिये यह तो आपकी ही मौज में समाई हुई जी रही है।

7. मैं कैसे लिखूँ बाबूजी, कि आप मेरे जी को अच्छे लगकर उसमें ऐसे समा गये हैं कि वह जी की लगी ही आज मुझसे कह रही है कि तू मुझे मत भूल जाना। जानते हैं क्यों? क्योंकि इसे मालूम है कि अभ्यासी की जी लगी ही उसे आपके पास ले जायेगी और तब इस बहाने से बेचारी इसे भी आपका दिव्य दर्शन मिल जायेगा। आपकी याद में डूबी हुई मेरी इन आँखों में मेरे आँसुओं की छलक मुझसे कह रही है कि 'तू मुझे मत भुलाना'। जानते हैं क्यों? क्योंकि याद में छलके आँसुओं का भी तो यह सौभाग्य है कि वे अपने बाबूजी की याद में ही बहे हैं। मेरे बाबूजी मैं तो यहाँ अपने वतन में भौचक हुई एकटक ऐसे खड़ी रह गई हूँ कि जैसे आपके प्यार में डूबी हुई मैं वह शम्मा हो गई हूँ कि जिसे देखकर लोग आपके दैविक–प्रकाश से

प्रकाश पाकर पुनः उज्जवल हो उठेंगे। आपके ही दिव्य–प्रकाश से प्रकाशित हुई आपकी यह शम्मा सदैव आपके लिखाये लेखन से वाणी से एवं प्यार से समस्त को प्रकाशित कर पाने का हौंसला देती रहेगी।

8. आपके दिव्यागमन ने आज विश्व को यह कैसे सौभाग्य का वरदान दिया है कि समक्ष में आप मुझे जो दैविक–दृश्य प्रदान कर रहे हैं इससे आपकी यह बिटिया समस्त को यह बता देना चाहती है कि आज के पावन पर्व की वह कैसी अनुपम घड़ी है (समय) जबकि समस्त के आध्यात्मिक–विकास के हेतु आदि–गुरू समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी सा. की प्रार्थना को स्वीकार करके आपके दिव्य अवतरण हेतु खुद आदि–शक्ति ने मुख्य–केन्द्र का द्वार खोल दिया। लालाजी की प्यार भरी प्रार्थना को देखकर वह विस्मित (आश्चर्यचकित) हो उठा था। किन्तु भाइयों दिव्य–एवं अनुपम तो वह समां था जबकि पुरूष (भूमा) नें अपनी आदि–शक्ति के अंश रूप दिव्य–बालक श्री बाबूजी के नन्हे मुखारबिन्द का दर्शन करना चाहा था। भला किसका साहस था जो उस दिव्य बालक का दर्शन उन्हें करा सके? तब आखिर को आदि–छवि ने ही लालाजी साहब के दैविक–प्यार के प्रतीक स्वरूप, उस नन्हें शिशु के दिव्य–तेजोमय मुखारबिन्दु का दर्शन कराया। परम्–पुरूष के नेत्र–द्वय विस्मृत हो उठे थे। दैविक संकल्प की पूर्ति हेतु समर्थ का अनुपम प्यार देखकर वह भूमा का गोपाल आज श्री बाबूजी के रूप में अवतरित होकर अपने लाला के लाल के रूप में धरती का दिव्य–रत्न बनकर छा गया है।

9. मेरे बाबूजी! हम सबकी तो आज के पावन–पर्व पर आपसे यही प्रार्थना है कि आप समर्थ सद्गुरू के साथ सदा अपनी दैविक–मुस्कान को बिखेरते हुये हमारे बीच अपने इस महोत्सव को परमानन्द से भरते रहें। और युग (समय) आपकी यादों के पुष्पों की वर्षा से इस महोत्सव को सदैव महकाता रहे। हमारे बाबूजी! आपकी 'संध्या' की तो आपसे बस यही प्रार्थना है कि हम सब अभ्यासियों पर आपकी कृपा–दृष्टि बनी रहे और आपकी नज़रों के पावन–प्यार में ही हम सबका पालन होता रहे।

प्रश्न दीवानगी का

1. हुआ दीवाना कोई ये बताना भूल गया,
   जिया परवाना कोई ये बताना भूल गया।।

2. लोग पूछे हैं कौन हो, कहाँ से आये तुम,
   नूर किस देहरी का है चूम रहा तेरे क़दम,
   ख़रीदा तुमने था ये सच बताना भूल गया।।

3. बताया आपने था ध्यान में मर मिटने को,
   बढ़े जो आगे तो मज़बूर किया जीने को,
   अनन्य–गति का भी था ख़्याल हमें भूल गया।।

4. सजाया नूर से कण–कण को आपने ही था,
   मन के दामन का तार–तार हुआ बेरंग था,
   समाये ऐसे कि खुद ध्यान हमें भूल गया।।

5. ज़ात पूँछे है भूमा से कहो ये कैसा हुआ,
   दोस्त था केन्द्र में तू कौन तुझे लूट गया,
   लाला के लाल पै खुद मेरा दिल भी वार गया।।

6. नज़ारा कैसा था जब केन्द्र में बढ़े थे क़दम,
   मची हलचल थी हमें बिन्दु में जो लाये तुम,
   प्रवेश पाया था, गौरव भी हमें भूल गया।।

7. तेरी मुस्कान पै बलिहार मारिफ़त भी है,
   शून्य–नज़रों में समाई वो, आदि–छवि भी है,
   सत्य–अंतिम है तेरी श्वाँस, हमें भूल गया।।

8. ख़ुद को भूले हुये कितना ज़माना बीत गया,
   याद जब आई, ज़माना था हमें भूल गया,
   दर्श जो पाया तुम्हारा तो ख़ुदा भूल गया।।

9. भूमा भी भूल गया भूमि की गरूआई को,
   कैसे बिसराये धरा बाबू की फ़िदाई को,
   देखा संध्या ने है, युग इनके चरन चूम गया।।

व्याख्या

1. भला ज़्यादती तो देखिये बाबूजी कि आज खुद दीवानगी मुझसे पूँछ रही है आखिर वह किसकी दीवानगी है, वह दीवाना कौन है इसे यह तो बताया जाय। इतना ही नहीं इसका यह भी पूँछना कि किसी शम्मा (बाबूजी रूपी) पर जो परवाना जलकर भी जिया है आखिर वह कौन है? वह यह भी तो बताना भूल गया है।

2. मेरे बाबूजी! दीवानगी आप से इस प्रश्न का उत्तर भी तो जानना चाहती है जो कि लोग मुझसे पूछते हैं कि ओ दीवानी! तू कौन है! कहाँ से आई है और कौन तुझे लाया है? वे यह भी तो जानना चाहते हैं कि किस दिव्य–चौखट का नूर मुझमें समाया हुआ है? लेकिन आप न जाने क्यों इसे यह बताना भूल गये कि आप में सतत् ही रमनें वाली आपकी इस बिटिया (अभ्यासी) को आपने खरीद लिया है (अपना लिया है) तभी तो दीवानगी अकेली रह गई है। कदाचित् तुझे (दीवानगी को) अपना सकने वाला दूसरा अभ्यासी कभी तुझे अपनाने का हौसला लेकर आयेगा। तो फिर तू धन्य हो जायेगी।

3. मेरे बाबूजी! मुझे तो आपने ही यह बताया था कि ध्यान में डूबकर मर मिटो अर्थात् ईश्वर रह जाये और तुम्हारा अहं मर जाये। लेकिन आपने यह क्या किया कि इस (परवाने) के मर (लय हो) जाने पर भी इसको जीवित रहने के अर्थात् जीवन मुक्त अवस्था में रहने को मज़बूर कर दिया है। हाँ इतना मैं अवश्य कह सकती हूँ कि पहले तो मैं सारूप्यता की दशा में समाकर ही जीवित थी। प्रेम की परिभाषा की विशेषता में जो यह अनन्य–गति आपने मुझे बख़्शी है इसका तो ख़्याल या याद भी मुझे भूल गयी है।

4. मेरे मालिक! मैं कैसे बताऊँ कि आपने ही तो मेरे कण–कण को अपने दैविक–नूर के दैविक–सौंदर्य से सजाया था। यहाँ तक कि मैंने पाया कि मेरे मन के दामन का तार–तार तेरे दैविक–सौंदर्य को पाकर अहं के रंग से बेरंग हो गया था क्योंकि अब भौतिक–रंग तो समाप्त हो गया था। इतना ही नहीं, आप तो कृपा करके मेरे

ध्यान में कुछ इस तरह से समा गये थे कि ध्यान मुझे ही भूल गया अर्थात् तभी बाबूजी ने मुझे लिखा था कि 'तुम्हें', अब ध्यान की कोई जरूरत नहीं है। कदाचित इसलिये कि आपके ध्यान ने मेरे अपने होने के भाव के ध्यान को ही भुला दिया था। अजीब हालत है यहाँ। आज पूर्वदशा का दृश्य समक्ष में इतना मधुर हो उठा है कि लेखिनी अपने सौभाग्य को सराह कर आज तो ज़ात अर्थात् भूमा के गिर्द का समां खुद भूमा से ही पूछ बैठा है कि दोस्त, तेरे साथ आज यह कैसा अचम्भा घट गया है कि तू अपने घर में ही था और कोई तेरी शक्ति (अंश) को तेरे से लूट कर ले गया। लेकिन यह सच भी तो आज मैं कहूँगी कि इस लाला के लाल अर्थात् श्री बाबूजी महाराज पर आज मेरा दिल भी अपने को वार (हार) बैठा है।

6. आज मेरे समक्ष में वह नज़ारा भी स्पष्ट में ही फैला हुआ है जबकि आपने मेरी उन्नति के डग को केन्द्र के अंदर प्रवेश दिया था। मैंने तब पाया था कि वहाँ जैसे प्रशान्त–सागर (स्पन्दनहीन) में भी हलचल मच गई थी अर्थात् मानों वहाँ खुशी की लहर उस समय आ गई थी जब आपने मुझे दैविक शून्य–दशा में भी प्रवेश देकर उस दशा से मुझे सजा दिया था। किन्तु हुआ यह कि मुझे वहाँ प्रवेश मिल जाने का गौरव भी भूल गया था अर्थात् मैं यह भी स्मरण में नहीं रख सकी थी कि मैं कहाँ हूँ। फिर ओ दीवानगी भला मैं तुझे अब क्या और कैसे बताऊँ कि तू किसकी है।

7. किन्तु बाबूजी, सच पूछिये तो हुआ ऐसा है कि तेरी उस मुस्कान पर जिसने पग–पग पर मुझे वहाँ की दशा का होश दिया था, आज खुद अर्थात् पूर्ण ईश्वरीय–ज्ञान भी बलिहार है आज वह भी मानों आपके चरणों में समा गया था। इतना ही नहीं तब मैंने यहाँ कुर्सी पर विराजे हुये आपकी शून्य–नज़रों के उस भेद को भी पहिचान लिया कि आपकी नज़रों में यहाँ की शून्य–दशा अथवा यों कहूँ कि आदि–गति ही समाई हुई थीं। इतना ही नहीं मैंने एक सत्य और भी स्पष्ट पाया कि अंतिम–सत्य आपकी ही श्वाँस है जहाँ से हमें तेरी प्राणाहुति का प्रवाह मिलता है।

8. मेरे बाबूजी! अब ऐसा लगता है कि मानों मुझे स्वयं को भूले हुये न जाने कितना समय बीत गया है कि जब अब यह गीत लिखते समय मुझे होश आया तो अचानक ऐसा लगा कि मानों ज़माना या समय ही मुझे भूल चुका है। कुछ ऐसा भी मैंने पाया है कि जबसे आपका दर्शन मैंने पाया था तबसे ईश्वर का मुझे ख़्याल ही भूल गया था।

9. हे मेरे बाबूजी! जबसे आपके, चरणों को चूमने का सौभाग्य इस पृथ्वी को मिला है तभी से मानों 'भूमा' को यहाँ की यानी पृथ्वी के भारीपन का एहसास भी भूल गया है। अब ऐसा सौभाग्य पाकर यह धरती खुद आपकी फ़िदाई, जो मानव–मात्र के हित, पुनः दिव्य–साक्षात्कार का संदेश एवं परम–शान्ति को लेकर आपके रूप में आई है, इसे कैसे भूल सकती है। आपकी कृपा से आपकी 'संध्या' ने भी इस दैविक–सत्य को पहिचान लिया है कि आज युग आपके ही पावन–चरण द्वय का स्पर्श पाकर अपने को धन्य एवं पावन बना रहा है।

गीत

(श्री बाबूजी महराज की लखनऊ में जन्म–शताब्दी–वर्ष के महोत्सव पर (सन 1998 में 14, 15, 16 नवम्बर) लिखा गीत)

1. मनायेंगे सौवाँ बरस ऐसा तेरा,
   जहाँ में कहीं रह न जाये अंधेरा।।

2. खुशी से भरा आज खुशियों का दामन,
   गया भूल पल को है खुद सत्य–अंतिम।
   कि कण–कण में देखा उजाला है तेरा।। जहाँ में.....

3. झूमें प्रकृति है, गया चौंक हर दिल,
   लगे ऐसा मन को, छुये तेरा आँचल।
   मिले है हर आहट पै, आभास तेरा।। जहाँ में कहीं.....

4. धरा ने ठिठक कर, तेरा मुख जो देखा,
   तो ऐसा लगे था वतन अपना देखा।
   चुराया नज़र ने है एहसास तेरा।। जहाँ में......

5. निगाहें ठहरती नहीं, आज रूख़ पै,
   क्यूँ बेबस है, दीवानगी आज खुद पै।
   खुदाई ने चूमा, अदब आज तेरा।। जहाँ में.......

6. लगाया तिलक आदि–शक्ति ने उनको,
   दिया लाला ने, दिव्य श्रृंगार उनको।
   मुबारक हो सौवाँ बरस सबको तेरा।। जहाँ में.....

7. अजब मुस्कुराहट है, अधरों पै ऐसे,
   इनायत हुई दिव्य नज़रों की जैसे।
   कदम–बोसी चाहे, करम आज तेरा।। जहाँ में.....

8. सदियों ने कैसे गुज़ारे हैं ये छन,
   हैं फूले समाते नहीं, आज ये मन।
   वतन की सदा में बहे प्यार तेरा।। जहाँ में.......

9. जुबां कैसे बाबू का है राज़ खोले,
महा–पार्षद ने, तेरे द्वार खोले,
समां था न हद थी, मंका था वो तेरा।। जहाँ में.....

10. संध्या गले से, लगायेंगे सबको,
उनकी दुआयें, लुटायेंगे सबको,
है पलकों पै सौवें बरस का सबेरा,
है युग को बदलता हुआ, ये सबेरा।। जहाँ में........

व्याख्या

1. ओ बाबूजी! आपके सौवें वर्ष का महोत्सव हम इस तरह से मनायेंगे कि विश्व भर में कहीं भी अज्ञान का अंधेरा नहीं रह जायेगा।

2. ऐसा लग रहा है कि खुशियों का आँचल भी आज खुशी से भर गया है। इतना ही नहीं, लगता है कि आपके शताब्दी वर्ष की खुशी के इस माहौल में भूमा (Ultimate) भी पल भर के लिये स्वयं को विस्मृत कर बैठा है। आज हमें हर कण में आपका प्रकाश प्रकाशित दिखाई पड़ रहा है। आज एक रहस्य यह भी उज्जवल हो गया है कि आज तेरे प्रकाश भूमा में अन्तिम–सत्य का प्रकाश ही प्रकाशित हो उठा है क्यों कि इस महोत्सव को देखकर (Ultimate) भी यह भूल गया है कि 'वह' वहाँ अर्थात् मुख्य–केन्द्र में है या यहाँ पृथ्वी पर उतर आया है।

3. हे बाबूजी! तेरे शताब्दी वर्ष के महोत्सव में आज मुझे ऐसा लग रहा है कि समूची प्रकृति आज आनन्दातिरेक में झूम रही है। लगता है कि इस परमानन्द को पाकर हर हृदय चौंक उठा है। क्योंकि हृदयों में ऐसा आंतरिक आनन्द छाया हुआ है कि लगता है मानों तेरे प्यार का आंचल ही समस्त के मन को छू रहा है। इतना ही नहीं, हर आहट में आज हमें तेरी मौजूदगी का ही आभास मिल रहा है।

4. ओ बाबूजी! ऐसा लगता है कि मानों पृथ्वी को भी आपके आने की

आहट मिल गई है तभी तो क्षणिक ठिठक कर जब उसने आपके दिव्य–मुखारबिन्द को देखा तो उसे लगा कि उसने अपने वतन अर्थात् भूमा का ही दर्शन पा लिया है। ऐसा लगता है कि धरा ने ही नहीं बल्कि समस्त नज़रों ने तेरे दर्शन के एहसास को खुद में भर लिया है।

5. आज हमारी निगाहों को क्या हो गया है जो आपके दिव्य–मुखारबिन्द पर ठहर ही नहीं पा रही हैं। मैं क्या लिखूँ कि जो निगाह आपके मुखारबिन्द की छवि को निरख कर दीवानी हो जाती थी वह उसकी दीवानगी भी कदाचित् आपको सतत् निहार पाने के लालच में अपने को भूल जाने के लिये विवश हो गई है। इतना ही नहीं ओ मेरे बाबूजी, आज मैं यह भी पता पा गई हूँ कि सारे जहाँ ने आपकी दिव्य–मौजूदगी के आलम (स्वामित्व) को चूम (स्वीकार) लिया है।

6. आपके पावन–जन्म शताब्दी के पर्व पर मैं देख रही हूँ कि आज ममतामयी जननी के स्वरूप खुद आदि–शक्ति ने आपके मस्तक पर तिलक लगाया है मानों हमें यह बताया है कि आप ही उसकी गोदी के एकलौते, दैविक लाल के रूप में धरा को दिव्य शक्ति एवं सौंदर्य से सजा रहे हैं। आपको अपनी प्रार्थना के फलस्वरूप पृथ्वी पर उतार लाने के दैविक–साहस को धारण करने वाले समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी ने ही इस शुभ–अवसर के लिये आपको दिव्य श्रृंगार से सजाया है। उनके दिव्य वरदान स्वरूप हम सबको अपने श्री बाबूजी का यह शताब्दी–वर्ष मुबारक हो रहा है, हमें बड़भागी बना रहा है।

7. ओ बाबूजी! आज आपके अधरों पर कुछ ऐसी मुस्कुराहट हम देख पा रहे हैं कि लगता है यह दैविक–मुस्कुराहट आपकी कृपामयी दैविक नज़रों के रूख को हमारी ओर मोड़ लाई है। भला कौन लेखिनी आज इस दैविक रहस्य के सत्य को उजागर कर पायेगी कि आपकी कृपा, आपके चरणों को पकड़कर मानों यह विनती कर रही है कि आज के दिन से आप उसे सतत् रूप से बरसने के लिये आज़ाद कर दें।

8. हे बाबूजी! हम यह तो नहीं जानते कि सदियों ने तेरे धरा पर आने के इंतजार में समय को कैसे व्यतीत किया है, लेकिन आज तो आपके अवतरित होने की खुशी में हमारे मन के साथ ही समय का हृदय भी खुशी से फूला नहीं समा रहा है। और ऐसा हो भी क्यों न जबकि तेरे देश से आती बयार से हमें निरंतर आपका प्यार ही मिल रहा है।

9. आज अपने बाबूजी की कृपा का यह दैविक–भेद मेरी जिह्वा कैसे खोल पायेगी यह तो मैं नहीं जानती हूँ–किन्तु इतना अवश्य लिखूँगी कि महापार्षद की दशा तेरे देश (Ultimate) में प्रवेश पाने के लिये **SEVEN RINGS** रूपी प्रवेश द्वार खोले थी। यह भी कैसा दैविक–आश्चर्य था कि अंदर प्रवेश पाने पर मैंने यही पाया था कि वहाँ न कोई समां अथवा वातावरण ही था और वहाँ कोई हद भी नहीं थी कि जिससे यह कहा जा सकता कि आगे कुछ और भी है। मात्र अनन्त की अनन्तता का ही पसारा प्रत्यक्ष में मैंने पाया था।

10. आज तो मेरे बाबूजी! आपकी 'संध्या' के हृदय में समस्त के प्रति ऐसा प्यार बह रहा है कि लगता है हम सबको ही गले से लगायें। और अपने 'बाबूजी' की कृपा के दिव्य वरदान को समस्त के लिये सदैव लुटाते रहें। जानते हैं क्यों? हमारी पलकों में समस्त के प्रति प्यार के ओसकण छाये हुये हैं जोकि अपने बाबूजी के शताब्दी–वर्ष के प्रातः की ताज़गी से भरे हुये है इतना ही नहीं, उनका जन्म शताब्दी–वर्ष युग को बदल देने के लिये हमारे लिये सुप्रभात बनकर आया है।

मुझे आज तेरी बहुत याद आये

1. मुझे आज तेरी बहुत याद आये।
   है कण–कण खिला दिव्य–सौंदर्य पाये।। मुझे.......

2. अजूबा तुम्हें ये है कैसे बतायें,
   रहाइश कहाँ और बैठे कहाँ हैं,
   तसव्वुर में ख़ुद ही उतर जैसे आये।। मुझे..........

3. नज़ारा छुये उनके आँगन का पलकें,
   वो जज़्बा बताये जो डूबा था उनमें,
   वो बैठे हैं ख़ुद को ही ख़ुद में छुपाये।। मुझे.......

4. थे खाटों पैं हम बैठे घेरे थे उनको,
   निगाहें नहीं छोड़ पाती थीं उनको,
   ये मुमकिन नहीं सुधि को वापस बुलायें।। मुझे......

5. मुबारक हो मासूमियत को हँसी वो,
   मुबारक लबों को महक हुक्के की हो,
   चरण छू के धरती पुलक सी थी जाये।। मुझे........

6. वो कौंधे थी बिजली सी, था तेज ऐसा,
   कि भूमा भी छूने में छवि यों हिचकता,
   नज़र भी डरे थी उन्हें लग न जाये।। मुझे........

7. करिश्मा ये कैसा कि खुद सत्य–अंतिम,
   झुकाये था सर मानों 'बाबूजी' हाकिम,
   बतायेंगी सदियाँ करम तेरा पाये।। मुझे.......

8. मुबारक था वो दिन दिखाया जो करतब,
   कि भूमा की ड्यौढ़ी पै था मेरा मख़तब,
   मिटाया था वो सब, पढ़ा के जो लाये।। मुझे......

9. उड़े होश यादों को दोहरायें ऐसे,
   तेरे प्यार का हो ये पैग़ाम जैसे,
   कि हर आदमी द्वार तेरा है पाये।। मुझे.........

10. है रौनक से तेरे शमां जल गई है,
बतायें किसे रूह खुद खो गई है,
'संध्या' झलक तेरी नग़में हैं गाये।। मुझे..........

व्याख्या

1. ओ मेरे बाबूजी! आज मुझे आपकी बहुत याद आ रही है। इतना ही नहीं आपकी याद आने पर ऐसा लग रहा है कि आनन्द से मेरा कण–कण मानों दैविक–सौंदर्य से भरकर खिल गया है, जैसे कि फूल खिल उठता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि अपने सर्वस्व श्री बाबूजी महाराज की चर्चा में अभ्यासी भाइयों के समक्ष बोलते–बोलते अंतर में ऐसी उमंग आती है कि जैसे श्री बाबूजी महाराज के समय का वह परमानन्द–मय समां इन सबके सामने उतार कर रख दूँ।

2. भाइयों, हमारे मध्य में विराजे श्री बाबूजी का यह अलौकिक–आश्चर्य मैं कैसे बताऊँ कि लगता था कि इनका ठिकाना कहीं और है, और बैठे हुये हमारे मध्य में है और ध्यान में बैठने पर लगता था कि ध्यान में मानों 'वे' स्वयं ही उतर आये हैं।

3. प्रिय भाइयों! आज मैं वह सारा दृश्य आपके समक्ष उतार कर रखने का प्रयत्न कर रही हूँ कि जो कुछ मैंने शहजहाँपुर में उनके चरणों में बैठकर देखा है। याद की पलकें मानों अभी उनके बाहर वाले आँगन को छूकर कुछ कहने जा रही हैं और प्रेम की उमंग जो मानो उस दैविक–दृश्य में डूबी हुई हैं, वह आज यह बता रही है कि लग रहा है कि 'वे' खुद को खुद में ही छुपाये हुये हमारे सामने बैठे हैं मानों आज वह सादगी ही उनका नक़ाब उतार रही है।

4. देखिये कैसा है वह दैविक–प्यारा सा नज़ारा कि 'वे' बाहर आँगन में कुर्सी पर बैठे हैं और हम सारे अभ्यासी–गण उन्हें चारों ओर से घेरे हुये खाटों पर बैठे हुये हैं। हर एक की निगाहें उनके मुखारबिन्द पर लगी हुई हैं, क्योंकि कोई भी दृष्टि 'उनके' दर्शन

को छोड़ नहीं पाती थी। एक अलौकिक–आश्चर्य यह भी था कि किसी के लिये भी यह सम्भव नहीं था कि अपनी सुधि (होश) को बेसुध होने से रोक सके।

5. भाइयों हमारे मध्य विराजे अपने श्री बाबूजी महाराज की उस मधुभरी भोली हँसी के बारे में मैं क्या और कैसे बताऊँ। बेदान्ती–मुख का बच्चों की भाँति खिलखिलाना मानों नन्हें–मुन्नों की मासूमियत को अपने में भर लाती थी इसलिये अब यहीं कहूँगी कि इस मासूमियत को यह दैविक–खिलखिलाहट सदैव मुबारक रहे। आगे और सुनिये–'उनके' आँगन के उस महत्–दृश्य को छूती हुई दैविक–पलकें अब हमें और क्या बताने जा रही हैं। तो लीजिये, सुनिये उनके होठों को और इससे लगे हुक्के को भी तो हम आज मुबारकबाद दे दें जोकि 'उनके' होठों से लगा अपनी महक के साथ ईश्वरीय–महक को भी फैला रहा था। हुक्के को उनके मधुर–होंठ और होठों को यह हुक्का सदा–सदा मुबारक रहे–यही हमारी प्रार्थना है।

6. भाइयों! क्या बताऊँ कि वह तेज कैसा था। जब भी उठकर 'वे' चलते थे तो लगता था कि मानो सामने बिजली सी कौंध गई हो। उनकी उस दिव्य–छवि को नज़रों से छू पाने में मानों खुद भूमा (Ultimate) भी हिचक जाता था–जानते हैं क्यूँ–क्योंकि उस नज़र को भी यह डर था कि उन परम–प्रिय को कहीं लग न जाये। कदाचित् इसीलिये भूमा को भी उनकी परम–प्रिय अलौकिक–दिव्य– छवि को नज़र भर निहार पाने में यह हिचक थी कि कहीं ऐसा न हो कि फिर वह नज़र वापस ही न आवे और उन्हें लगकर उनमें ही समाई रह जाये।

7. अब आगे एक कैसा करिश्मा था उनका वह भी मैं अब आपको बताने जा रही हूँ–वह–डिवाइन–करिश्मा यह है कि लग रहा था कि 'वे' कुछ इस तरह से विराजे हुये थे और अंतिम–सत्य का केन्द्र उनके समक्ष कुछ इस तरह से झुका हुआ था कि लग रहा था कि मानों श्री बाबूजी परमशक्ति के हाकिम या स्वामी हैं। हे बाबूजी मैं ही नहीं, आगे आने वाली सदियाँ या समय तेरी

कृपा में डूबा हुआ खुद ही इस दैविक–सत्य को उजागर कर देगा।

8. ओ मेरे बाबूजी! उस दिन का आपका करतब तो समस्त को मुबारक है कि जब आपने मुझे भूमा के द्वार पर ले जाकर यों खड़ा कर दिया था कि जैसे आज मेरे पाटी–पूजन का महत् दिन है। अर्थात् मुख्य–केन्द्र के क्षेत्र की पढ़ाई शुरू करने का मेरा दिन था। मुझे तो बस ऐसा ही लग रहा था कि अब तक जो भी सहज–मार्ग साधना में आपने दैविक–शिक्षा–प्रदान की थी वह पूर्ण करके अर्थात् अब तक की पूरी हालतों को वहाँ की हालत में, आपने ऐसा लय कर दिया था कि मैं सब कुछ भूल चुकी थी उनका यह दैविक करतब अर्थात् वरदान समस्त को इसलिये मुबारक कर रही हूँ कि आज मुख्य–केन्द्र (भूमा) का दिव्य–द्वार समस्त के हित खुल गया है। उन्होंने समस्त के हित अंतिम–सत्य की गति को सुलभ कर दिया है।

9. भाइयों! अपनी सब बीती हुई दैविक–दशाओं की याद के बारे में उस समय के नज़ारे को दुहराते हुये आज मुझे ऐसा लग रहा है कि मानों यह समस्त के हित श्री बाबूजी के प्यार का दिव्य–संदेश दे रही हूँ। वह दैविक संदेश भी कैसा कि आज हर आदमी के लिये मुख्य केन्द्र के द्वार तक पहुँच पाना सुलभ हो गया है क्योंकि धरा पर श्री बाबूजी के अवतरण से उनके सहज–मार्ग का द्वार पाकर अब हमारे लिये अंतिम–सत्य का द्वार भी सुलभ हो गया है और उनके सहज–मार्ग–साधना का अवलम्बन पाकर, उनकी प्राणाहुति–शक्ति का अंतर में प्रवाह पाकर प्रवेश पाना ही नहीं सरल हो गया है बल्कि गति–विहीन गति (दशा) को पाने का भी हमें सौभाग्य प्राप्त हो गया है।

10. हे बाबूजी! आपके दैदीप्यमान् दिव्य–तेज की रौनक़ से मानों वातावरण में, आध्यात्मिक–पथ को रोशन करने के लिये सतत्–शमां रोशन हो उठी है। किसे और कैसे बताऊँ मैं कि इस दैविक–शमां की रोशनी ने वातावरण की रूह या आत्मा को भी मानों आत्म–सात् कर लिया है जिससे मानव–अंतरात्मा

भी रोशन होकर ईश्वरीय दिव्य–धारा को आत्मसात् करने योग्य हो गई है। 'संध्या' कहती है कि हे बाबूजी! आपकी दैविक–झलक जो वातावरण में छाई हुई है वह हमारे अंतर में उतर कर आपके गुणानुवादों का गायन करती रहेगी।

आफ़ताबे–मारिफत

1. आफ़ताबे मारिफ़त! ऐ नुक़्ता–दाने मारिफ़त्।
रहनुमाये सालिकाँ ऐ जिस्मो–जाने मारिफ़त।।

2. तेरी हर तर्ज़े–रहाइश में थी शाने–मारिफ़त।
हर अदा में था तेरी नूरे–जहाने मारफ़त।।

3. हो चुका गो वस्ल फिर भी है समाधी पर वह नूर।
ज़र्रे–ज़र्रे में है अब भी आनो–बानो मारफ़त।।

4. हर तरफ़ देखा जो तूने मतलये–ज़ुल्मत–मआब।
तूने बदली सर–ज़मीनो–आसमाने मारफ़त।।

5. बनके मूजिद इक सहज से मार्ग की डाली बिना।
इक नई बुनियाद पर रक्खा मकाने मारफ़त।।

6. जुम्बिशें–अबरू में थी क्या जाने क्या–क्या आबो–ताब।
जगमगा उठा था जिससे आसमाने मारफ़त।।

7. फूँक दी वह रूह जिसका फ़ैज़ है अब तक रवाँ।
हर तरफ़ फूला फला है गुलिस्ताने मारफ़त।।

8. हर तकल्लुम में थी तेरे प्रेम की मौजें रवाँ।
हर इशारे में रवाँ थी दास्ताने मारफ़त।।

9. दीदनी था सब्रो–इस्तक़लाल का हुस्नो–कमाल।
तुझ पे थे सौ जाँ से कुरबाँ शायक़ाने मारफ़त।।

10. सच हुआ जो कुछ कहा था तूने वर–वक्ते–विसाल।
जाग उठेगा खुद ही बख़्ते खुफ्तगाने–मारफ़त।।

11. "मेरे" परवानों की ख़ातिर शम्मा जल उट्ठेगी खुद।
खुद ब खुद दौड़ेंगे उस पर तालिबाने–मारफ़त।।

12. आज है फ़जलों करम से तेरे वह रौशन चिराग़।
रोशनी पाते हैं जिससे आशिक़ाने मारफ़त।।

13. चश्में हक़–बी देख ले "बिस्मिल" निगाहे शौक से।
फूलता फलता है कैसा बोस्ताने मारफ़त।।

व्याख्या

यह क़सीदा श्री बाबूजीमहाराज के गुरूभाई उपनाम, बिस्मिल जी ने लिखा है। एक बार समर्थ सद्‌गुरू लालाजी साहब से सिटिंग लेने के पश्चात् जो भी उनके ध्यान में उतरा था, एक शायर होने के नाते उसे ही उन्होंने इस कसीदे के रूप में लिखा है। हमारे श्री बाबूजी महाराज एवं उनके गुरूभाइयों के लिये यह कसीदा समर्थ सद्‌गुरू के साँचे गुणानुवाद का धनी होने के कारण बहुत ही प्रिय था। एक बार इसे जब आ. मास्टर ईश्वर सहायजी ने हमे दिखाया तो मेरे पिताजी ने इसे मस्तक से लगा लिया। वे उर्दू भाषा के अच्छे जानकार थे इसलिये इस पूरे क़सीदे के अर्थ को उन्होंने हम सबको समझाया था। लय–बद्ध हो जाने पर जब हमने इसे शाहजहाँपुर में गाकर सुनाया था तो श्री बाबूजी एवं उनके बहुत प्रिय गुरूभाई पं. रामेश्वर प्रसाद जी के साथ सभी लोग बेहद खुश हो गये। पापाजी की आँखों से तो बराबर अश्रुधारा बह रही थी। हम सब चुपचाप बैठे अपने श्री बाबूजी के मुखारबिन्द को ही निहार रहे थे। तभी एक दैविक डिक्टेट में आया कि कसीदे के गाने के लिये जो भी इनाम इन्हें दिया जावे वह थोड़ा ही होगा। फिर भला जिन गुरूभाई ने यह दैविक–कसीदा लिखा था उन्हें क्या दैविक–तोहफ़ा मिला होगा यह तो हम सोच भी नहीं सकते हैं। हम सब तो अवाक् बैठे हुए बाबूजी महाराज का मुखारबिन्द निहार रहे थे क्योंकि हमारे और समस्त के हित इन दिव्य–विभूति की प्राप्ति जैसा इनाम भला और क्या हो सकता था। बस तभी से समर्थ लालाजी सा. के पावन जन्मोत्सव बसंतपंचमी के शुभ–दिन एवं मिशन के वार्षिकोत्सव भंडारे का प्रारम्भ समर्थ गुरू लाला जी सा. की तारीफ़ में लिखे गये इस क़सीदे से होता है। इसका अर्थ पूर्णरीत्याः लिख पाना तो कठिन है किन्तु लिखने का प्रयास इसके अर्थ की यथार्थता को कुछ न कुछ प्रगट कर ही देगा।

1. हे ब्रम्ह–ज्ञान के सूर्य, एवं ब्रम्ह–ज्ञान की बारीकियों (भेद) के ज्ञाता, आप सूफी–संतो के मतानुसार प्रेम की दो श्रेष्ठ–अवस्थाओं

में प्रथम जज़्बेवाली अर्थात् ईश्वरीय–प्रेम ही के उभार की अवस्था वाले और दूसरी प्रेम को आत्मसात् कर लेने वाली प्रगाढ़ प्रेम की सूक्ष्म–अवस्था को प्राप्त सालिकों के भी मार्ग–दर्शक हैं। इतना ही नहीं हे परम–संत, ब्रम्ह–ज्ञान का शरीर और प्राण दोनों आप ही हैं।

2. हे समर्थ! आपकी रहनी के हर तरीके में ईश्वरीय–ज्ञान की शान अर्थात् (श्रेष्ठता) का ही आभास मिलता था। अथवा यों कहें कि आपकी रहनी भी ईश्वरीय–ज्ञान से ओत–प्रोत थी। आपकी हर मुद्रा (अदा) भी ब्रम्ह–ज्ञान के दिव्य–प्रकाश अर्थात् (नूर) से प्रकाशित थी।

3. हे सद्गुरू! आपका दिव्य–योग (महासमाधि) हो जाने पर भी आपकी समाधि में भी ऐसा दिव्य–प्रकाश या नूर मौजूद है जिससे वहाँ के कण–कण में ब्रम्ह–ज्ञान की ही शान एवं श्रेष्ठता और दिव्य–सौंदर्य ही फैला हुआ मिलता है।

4. हे आदि–गुरू! जब आपने इस संसार में चारों ओर अज्ञान के अंधेरे को देखा तो उसे दूर करने के इरादे से आपकी दृष्टि ने धरा से लेकर आसमान तक एक दैविक–निखार फैला दिया जिससे संसार में पृथ्वी से लेकर आकाश तक एक परिवर्तन आ गया।

5. हे लालाजी सा! आपने समस्त के आत्मिक–विकास के हित श्री बाबूजी द्वारा एक सीधे और सहज से मार्ग की स्थापना की है। हे समर्थ! आपने ब्रम्ह–ज्ञान रूपी मकान को एक नई अर्थात् ध्यान की नींव पर खड़ा किया है जिससे साधक को साधना के लिये एक नवीन दिशा मिल सकी है।

6. हे सद्गरू! आपके भौंह के इशारे मात्र में कुछ ऐसा दिव्य–कमाल था कि जिससे ईश्वरीय–ज्ञान रूपी आकाश भी उज्जवल हो उठा था।

7. हे समर्थ! आपने समस्त में ऐसा दैविक–प्राण फूँक दिया है कि जिसकी प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह आज समस्त के हित प्रवाहित है। ऐसा लगता है कि इसके फलस्वरूप हर ओर ईश्वरीय–ज्ञान का बगीचा फल और फूल रहा है।

8. हे लालाजी साहब, आपकी बातचीत के तरीके से मानो समस्त में प्रेम की धारा प्रवाहित हो जाती थी। इतना ही नहीं बातचीत के हर लहजे (इशारे) से मानों ईश्वरीय–ज्ञान की चर्चा ही रहती (प्रवाहित) रहती थी।

9. हे समस्त के प्रिय! संतोष, दृढ़ता एवं स्थिरता के संगम से पूर्ण आपका सौंदर्य दर्शनीय था। कुछ ऐसा भी था कि ब्रम्ह–ज्ञान के जिज्ञासु आप पर सौ, सौ प्राणों से न्यौछावर थे क्योंकि आप तो ब्रम्ह–ज्ञान के स्वामी ही थे।

10. हे महा महात्मन्! आपकी भविष्यवाणी जो आपने अंतिम समय में की थी कि ब्रम्ह–ज्ञान का सोया हुआ भाग्य स्वतः ही जाग उठेगा, वह पावन वाणी श्री बाबूजी के द्वारा आज सच हो उठी है।

11. हे संत–मत के प्रतीक! आपका कथन, कि मुझसे प्रेम करने वालों के लिये दिव्य–ज्योति की लौ स्वतः ही ज्योतिर्मय हो उठेगी जिस पर पतंगे की भाँति ईश्वरीय–ज्ञान के जिज्ञासु ख़ुद–बख़ुद दौड़ पड़ेंगे, आज श्री बाबूजी द्वारा मानो सिद्ध हो उठा है।

12. हे पूज्य–वर! आपकी अनुपम कृपा से दिव्य–प्रकाश का दीपक बाबूजी के रूप में आज स्वतः ही प्रकाशित हैं और ब्रम्ह–ज्ञान की प्राप्ति चाहने वाले आज उनसे ही ब्रम्ह–विद्या का प्रकाश पा रहे हैं।

13. हे आदि–गुरू! विस्मिल का कहना है कि 'सत्य को पहिचानने वाली निगाहें अब शौक से देख लें कि आपकी कृपा से ईश्वरीय–ज्ञान रूपी बगीचा आज कैसा फूल और फल रहा है।